शिल्पी

शिल्पी

श्री सुमित्रानंदन पंत



राजकमल प्रकाशन

मूल्य : चार रुपए

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली

मुद्रक राष्ट्रभाषा प्रिन्टर्स २७ विद्याश्रम क्वीन्स रोड दिल्ली

विज्ञापन

शिल्पी में मेरे तीन काव्य-रूपक संगृहीत हैं, जो प्रयाग आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित हो चुके हैं। इन रूपकों में वर्तमान विश्व-संघर्ष को वाणी देने के साथ ही नवीन जीवन-निर्माण की दिशा की ओर इंगित करने का प्रयत्न किया गया है।

१२ सितंबर ५२ }

सुमित्रानंदन पंत

डा० नगेन्द्र को
सस्नेह

अनुक्रम

शिल्पी

(कलाकार का मनःसंघर्ष)

शिल्पी
शिष्या
दर्शक गण
आमन्त्रित जन
जननायक

प्रथम दृश्य

[शिल्पी का कला-कक्ष, जिसमें विविध आकार प्रकार की मूर्तियाँ रखी हैं। शिल्पी की शिष्या मूर्तियों को झाड़ पोंछकर अलमारियों में सँजो रही है। वृद्ध शिल्पी पर्दे की आड़ में एक नवीन प्रतिमा के निर्माण में संलग्न है। वह दत्तचित्त होकर छैनी पर हथौड़ी चला रहा है और बीच में गुनगुनाता जाता है।]

गीत

निर्मम हृदय शिला ! (निश्वास)
कैसे पाऊँ प्रियतम की छवि
जड़ पाषाण शिला !
मति की छैनी विभ्रम कुंठित
पौरुष घन तृष्णा कर लुंठित
कैसे कटे अचेतन पाहन
धार से रिसा मिला !
दीप हँसे छाया अँधियारा
मन में ममता का तम पाला
अमर चेतना स्पर्श बिना कब
मानस कमल खिला !

शिल्पी— (खीझकर)

यह पाषाण नहीं मानेगा मेरा अंकुश ! ...
निष्ठुर प्राण नहीं पिघलेगा ... इस पत्थर से
माथा पच्ची करना अपना सिर धुनना है !
अथवा मूढ़ निष्ठुर, दुराग्रही मेरा पुत्र ! ...वह
सौम्य कला के स्पर्शों से कैसे चेतेगा
यदि शस्त्रशाला के जड़ संस्कार ग्रहण कर !
धरती के निश्चेतन का निश्चेष्ट उपल यह

अपना निश्चित आग्रह सहज नहीं छोड़ेगा
इसके अंतस में सोई जो मूक चेतना
दुर्मति उसे नहीं जगने देगा बाधक बन !
लो छेनी भी टूट गई ! ऊँह, कुच पड़ गई
मरी धार सिर खपा खपा कर ! सरला बेटी
मुझे जरा मुसमुस फुकना तो देना बेटा !
यह किर्री बेकाम हो गया फूल पत्तियाँ
नहीं काटता तिसरा भी सेठी आना ! हाँ
पहिले मोलाई ले लूँ ! यह रहा नेरना !
ठोक पीट, देखूँ पत्थर में फूल खिल उठें !
(फिर कार्य-व्यस्त हो जाता है)

गीत

आ जाता वसंत पतझर में
प्राणों का स्पंदन प्रस्तर में
जगती दिव्य ज्योति अंतर में
तम के मूल हिला !
दीपित होता अंधकार जब
जड़ में चेतन का निखार जब
भाव रूपमय निराकार जब
सार्थक सृजन कला !
जीवन संवर्धन होता जब
मिटता जरा मरण युग का भय
हँस उठता नव युग अरुणोदय
जब संग्राम छिड़ा !

(छेनी रखकर मूर्ति का निरीक्षण करता है)

शिल्पी— ईश्वर ! अब आकार पाषाण सजीव हुआ कुछ ! ...
युग विषाद की पृष्ठभूमि साकार हो गई,—
प्रस्तर के उर में युग जीवन का समुद्र ही
हिल्लोलित हो उठा सुप्त घन भावों में !

मेघों में विद्युत् सी तमस में झंझा सी
अंधकार को चीर, गई चेतना शिखा ज्यों
दौड़ रही जन मन में दीपित कर शत आनन !
गर्वोन्नत मस्तक विस्मय से झुके हुए मुँह
विस्फारित लोचन विस्तृत उर, उठी भुजाएँ—
सागर लहरों-से शाखा लपटों-से अनगिन
जीवन आकांक्षा से लगते स्पंदित-कंपित —
मधु ज्वाला से वेष्टित नभ तक धाराओं-से !

निखिल दृश्य पट आंदोलित है नव भावों से !
एक बृहद् चट्टान फलक ही नव चेतन हो
जीवन की गति से हो उठा अबाध् गुंजरित !
रेखाओं में ध्वनित हो उठा मूक अचेतन
भावों के स्पर्शों से जाग उठी चिर निद्रा !
था अनंत यौवन नव फूट पड़ा पाहन में !
भंगुर जीवन को बंदी कर शिल्पकार ने
अमर कर दिया कालचक्र की गति स्तंभित कर !
मूर्त हो उठा नव युग का इतिहास मूक ही !
सीमा में निःसीम अमरता को मृण्मय में
बाँध लिया शाश्वत को क्षण में स्थूल शिल्प ने !
रूप बढ़ गया है अरूप से स्थूल सूक्ष्म से !

(ध्वनि-प्रभाव द्वारा आशा का निराशा में परिणत होना)

किन्तु नहीं यह मात्र भावना का प्रभाव है !
आत्म मुग्धता है, भावुक मन बहक रहा है !
कलाकार के अहंकार तू बालक मत बन
तेरा यह शिशुओं का सा उल्लास व्यर्थ है !
हाय अभी तो तू छाया ही पकड़ सका है,
अभी स्वर्ग-सोपान पार करना है तुझको !
बिना शिखर के पर्वत कैसा ? यह गौरवमय
शिखर अभी ओझल है तुझसे ! भासुर है नभ !

शिल्पी— उधर शिल्प के कुछ विशिष्ट प्रतिमान पड़े हैं
जो नवीन हैं संभव इनकी मार्जित रुचि को
उनसे कुछ परितोष मिले !

एक दर्शक— निश्चय ही ऐसे
निरुपम कला प्रतीकों को अवलोकन करके
किसकी आँखें तृप्त न होंगी !

दूसरा— अद्भुत कृति है !

तीसरा— चलो इधर ही से देखें यह गांधीजी की
प्रतिमा है !

शिष्या— जी यह प्रसिद्ध दांडी यात्रा के
जननायक गांधीजी हैं !

एक— उन्नत मस्तक पर
रोली अक्षत का जन श्रद्धा का प्रतीक सा
मंगल तिलक सुशोभित है दक्षिण कर में स्थित
उनकी चिर परिचित लाठी है, जो बापू के
दृढ़ निश्चय सी आगे बढ़ने को उद्यत है !
बायाँ पैर उठाए स्थिर निर्भय मुद्रा में
खड़े हुए वे युग प्रभात किरणों से मंडित
मेरु शिखर-से सुन्दर लगते—दीपित आनन
लोक जागरण की उज्ज्वल चेतना शिखा-से !
आत्मत्याग के शुभ्र चिह्न सी घुटनों तक की
धोती पहने भारतीय जन निर्धनता की
मित भूषा सी—तप-पूत शुचि स्वर्णिम तन पर
खादी की प्रिय चादर ओढ़े सात्विकता की
स्वच्छ चन्द्रिका सी दुग्धोज्ज्वल —शान्त सौम्य वे
देवपुरुष से निरुपम लगते स्निग्ध हास्यमय !

दूसरा— शत प्रणाम इस महापुरुष को !

तीसरा— जीवित कृति है !

शिष्या— चिन्तन की मुद्रा में बैठे हैं बापूजी
इस प्रतिमा में !

एक— बड़ी लोकप्रिय मुद्रा है यह !
ध्यानाभ्यास में टाँगों को घुटनों से मोड़
ध्यान मौन अंतःस्थित है कर्मठ युगद्रष्टा
तेजोमय निर्बाध प्रकाश शिखा सी लगती
ऊर्ध्व देह, अधरों के सम्मुख दक्षिण कर की
मुट्ठी बँधी हुई, निर्मम संकल्प से भरी।
निश्चल पलकों पर केन्द्रित एकाग्र दृष्टि में
स्वर्णिम छाया झलक रही सक्रिय चिन्तन की—
अंधकार को भेद युगों के ज्यों भारत की
उज्ज्वल भावी देख रहे हों उच्च शिखर पर।

दूसरा— मानव जीवन के शिल्पी-से लगते शोभित।
बड़ी भाव व्यंजक प्रतिमा है ! मुखमंडल की
मौन कांति गंभीर मेघ से चन्द्रबिम्ब सी
फूट रही है—विग्रह से भास्वर किरणों सी।

शिष्या— चित्र अंक गांधीजी का यह अर्धकाय है।

तीसरा— अनुपम है ! मुख पर चिर परिचित हास्य रेख है !—
शांति हिमालय की चोटी पर नहीं मिलेगी
उसे प्राप्त करना होगा मानव समाज म
प्रतिदिन के कर्मों में जीवन संघर्ष में —
ऐसा कहने वाले कर्मनिरत बापूजी
सौम्य हास्य बरसाते एवं विपन्न पथ पर
घनाच्छन्न उर का सुख वितरण कर जनमन में।

दूसरा— निःसंशय धार्मिक वस्तुवादी थे बापू।

शिष्या— इधर खड़े गांधीजी सविनय हाथ जोड़ कर।

तीसरा— विविध रूप में ज्यों सर्वत्र विराजमान हों।

एक— अभिवादन करते हैं इसमें वे जनगण का।
यह प्रसिद्ध प्रतिकृति है उनकी भारतजन के
प्रिय अधिनायक जिस विनम्रता की प्रतिमा थे
यह कृति उसकी सुस्मृति चिर जीवित रक्खेगी।

जहाँ अन्य देशों के जननायक इस युग में
अंगरक्षकों से बहु रहते घिरे निरंतर
वहाँ अहिंसक बापू निर्भय स्वर्ग दूत-से
मुक्त विचरते रहे सतत जनगण समूह में—
सागर लहरों-से जो जय घोषों से मुखरित
उन्हें सुरक्षित रखते थे अश्रावेष्टित कर!

दूसरा— अपराजित व्यक्तित्व रहा उनका देवोपम!
पावन वे कर गए धरा को चरण प्रणत कर,
गौतम ईसा-से जग को सन्देश दे अमर!

शिष्या— गौतम बुद्ध उधर शोभित हैं ध्यानावस्थित!

एक— आत्मवृन्त पर, मन्द स्मित ज्यों मानस शतदल!
प्रस्तर का यह माध्यम भी अन्तश्चेतन हो
समाविष्ट हो उठा शांति सा मूर्तिमान बन!
पद्मासन में लीन—अर्धस्फुट युगल कर कमल
स्वर्ग दया के अर्घपात्र-से शोभित स्वर्णिम
विश्व प्रीति आस्थाओं की आजानु बाहुएँ,
करुणा द्रवित दृगों रश्मि गुम्फित सागर सा—
अन्तर्मोचन ज्योति शिखर-से ऊर्ध्व समन्वित!

शिष्या— ये मसीह हैं!

दूसरा— दिव्य हृदय साकार प्रेम-से!
स्वर्ग राज्य के अग्रदूत भगवत् जीवन की
महिमा गरिमा के अग्रदूत पृथ्वी पर
बिखरे जो उर का पलकों पर अमर स्वप्न से!
धन भू के अमृतों को ईश्वरीय रुचिर दान से
पुरस्कार कर गए, क्षमा से प्रीति द्रवित कर
हिंस्र धरा उर की निर्ममता की शूलों को!

तीसरा— गौतम से गांधी तक भू जीवन विकास क्रम
विकसित करता स्वप्न चरण धर नया धरा में!
भू जीवी था पुन स्वर्ग चेतना शिखा था

शिष्या— ग्राहक बनना होगा उसको उठा उच्चतर !
यह कवीन्द्र का पर्यंकाय है !

एक— कला सृष्टि है !
पूर्ण साम्य है मुखमंडल की रेखाओं में !
शांत सौम्य मुख मुख भी जैसे स्वयं काव्य है !

दूसरा— अद्वितीय गायक थे निश्चय कवियों के कवि
गुरु रवीन्द्र नव युग द्रष्टा नव जीवन स्रष्टा
अमर कल्पना-पंख खोल रसरूपा स्मित
सेतु बाँध जो गए धरा को मिला स्वर्ग से—
स्वप्न मुखर भावों की निःस्वर पद चापों से
झंकृत कर मानव आत्मा के नीम मौन को !

तीसरा— अद्भुत प्रतिभा थे रवीन्द्र इस युग की निश्चय
उद्बोधन के गान छेड़ निद्रित वसुधा को
नव जीवन शोभा में जो कर गए जागरित !
मेघ मंद्र गर्जन भर भ्रमरों सा गुंजन कर
नव वाणी दे गए, सर्वगत मनुष्यत्व को !
राष्ट्र प्रेम का मंत्र फूँक जनमन समुद्र को
मातृ भूमि के गौरव से कर गए उच्छ्वसित !

एक— जीवित कला मूर्ति थे कविवर !

शिष्या— उधर देखिए,

एक— लौह पुरुष सरदार पटेल विराजमान हैं !
कर्मनिष्ठ बापू के सैनिक ! भव्य मूर्ति है !
दृढ़ प्रतिभ मुख मुद्रा परिश्रम गठित कलेवर,
उत्तरीय चिर परिचित झूल रहा कंधों पर
विस्तृत वक्ष विशाल स्कंध ज्यों पुरुषसिंह हों
खड़े सामने ! स्मित नयनों में करुणा ममता
झलक रही उर की अंबर में रजत बाष्प सी !

दूसरा— गढ़ पाषाण पर पौरीधकर शोभित हैं क्या ?

शिल्पी— ये मेरे अभिनव प्रयोग हैं शिल्पकला के—

(पास आकर) चंद्र कौमुदी की प्रतिमा यह श्वेत स्फटिक पर !

तीसरा— मोह रजत निर्झरिणी सी उन्मुक्त छटा में
उमड़ रही या प्राणों की चंचल आभा सी
अपनी ही शोभा में तन्मय तुहिन फेन का
झीना आँचल फहराए यह शिल्प स्वप्न की
शरद चंद्रिका है शायद !

एक— स्वर्गीय कांति है !

दूसरा— रुई के अपलक विस्मय से स्मित वक्षस्थल
मर्म प्रीति के मृदु भावों से ममता स्पंदित
वायवीय कल्पना मूर्त हो उठी शिला में
स्फटिक पात्र में बंधी स्वप्नों की उड़ान हो !

तीसरा— मुक्त कौमुदी को निज पुलकित बाहु परिधि में
भरने को उन्मुक्त यह हँसमुख चंद्रदेव है !
लगता है मानो नव आकांक्षा का तन धर
मूर्त हो उठा हो अनंत सद्य यौवन में !
अर्धमुँदे नयनों में स्वप्नों का सम्मोहन
स्पंदित वक्षस्थल में तारापथ का वैभव
अंगों में विजड़ित हो तन्मय मौन पूर्णिमा —
आभा मणि सी कला सुहाती प्रिय मस्तक पर !
गौरीशंकर ही जैसे नव कला स्पर्श से
चंद्र कौमुदी के प्रतीक बन गए हों अमर !
दिव्य सृष्टि है !

एक— यह क्या राधाकृष्ण हैं युगल ?

शिल्पी— आप ठीक कहते हैं दोनों प्रथम दृष्टि में
राधाकृष्ण सदृश लगते हैं जैसे मैंने
मेघ दामिनी की मादक पावन शोभा को
मूर्तित करने का प्रयास है किया शिल्प में !

दूसरा— मौलिक नित्य-नवीन कल्पना है यह निश्चय !
मौन विस्मित मेघ कृष्ण सा लगता सुंदर,

बाण्यों की लहराई रेखा पीत बसन सी
इन्द्रचाप का अंश दीखता मोर मुकुट सा
मस्तक पर शोभित ! गंभीर उदार मेघ छवि
भाव साम्य रखती है अद्भुत घनश्याम से !
अर्ध निमीलित लोचन कुंचित उसकी अलक
करुणा विगलित अंतर, शोभा निर्झर बाँह
नील *गगन* की पृष्ठभूमि में उभरी आकृति
अनुपम लगती है !

तीसरा— वारिद के उर से लिपटी
पुलक लता सी आभा बेली प्रतनु दामिनी
थी राधा सी तन्मय लगती कृष्ण प्रेम में !
चंचल चंचल खिसक उच्छ्वसित वक्षस्थल से
छाया सा लिपटा है घन के कटि प्रदेश में !

एक— स्वप्न सृष्टि है !

दूसरा— शिल्पकला का चमत्कार है !

शिल्पी— पूर्ण चंद्र सागर बाला की प्रतिमा है वह,
वाम पार्श्व में !

एक— मूर्तिमान प्रेमाकर्षण है !
उमड़ रही उद्दाम नील सागर की वेला
नव यौवन की चंचल शोभा में हिल्लोलित
आकुल बाँहें उठी मुक्त भावना ज्वार सी
पूर्ण चंद्र को बाँधी करने बाहुपाश में !
पृष्ठदेश पर लहराए घन कोमल कुंतल
फर्नों के स्मित फूलों की माला से गुंफित
जलप्रसार सा फैला चल अंचल अकूल ज्यों
अंबर तट छूने की आशा से उद्वेलित !
मर्मस्पर्शी आकर्ष मीन लोचन हैं अपलक
भ्रू रेखा में चपल ऊर्मियाँ मानो स्तंभित —
स्फीत वक्ष में मचल सिन्धु ही प्रीति उच्छ्वसित ! —
पूर्ण चाँद मुसकुरा रहा है, विजय दर्प से

रश्मिपाश में बाँधे उन्मद रूप ज्वार को
उन्मुख अधरों पर नीरव चुंबन अंकित कर!

दूसरा— अंकित स्फूर्ति की द्योतक है सप्राण मूर्ति यह!

तीसरा— वह कोने में एकदम है भिन्न विभासम!

दूसरा— परिचय देता स्वत गजबदन प्रणव रूप सा!

एक— अहा इधर शोभित है मनमोहन मुरलीधर,
मैं इनको ही ताक रहा था! कैसी स्वर्गिक
भव्य मूर्ति है! चित्रकला भी धन्य हो उठी!
मोर मुकुट मस्तक पर श्रवणों में मकराकृत
प्रिय कुंडल जो झाँक रहे कुंचित अलकों से
सुघर नासिका अधर मधुर स्मिति रेखा-सी लिये
वृषभ स्कंध पीताम्बर से भूषित नीरद तन!
कौस्तुभ विस्तृत उर में झूल रही वनमाला
मधु श्वासों से रोमांचित गलबाहीं दी हो!
केहरि कटि स्थित मध्य ऊर्ध्व त्रिवलों के तट पर
महलोक सी शोभा स्तंभों सी जंघाएँ,—
चरणों में बज उठती स्वर्णिम पायल निःस्वर!
भुवन मोहिनी है त्रिभंग मुद्रा त्रिलोकमय
ज्यों अरूप चेतना हो उठी मूर्तिमान हो!
प्रीतिपाश सी बाँह तिर्यक मुख के सम्मुख
उठी हुई, प्रिय करायों से वेष्टित प्रकाण्ड मृदु,
नव कमलों-से युगल करों के मध्य प्रस्फुटित
संसृति स्वर में धाम नीरव मोहक मुरली—
मोहन मुरली जिसके कोमल अधरों पर
मुग्ध प्रकृति सजग करती नतिसम में नमित!

दूसरा— मोहन की मुरली प्रतीक है अमर राग की—
वह सम्मोहन चराचरों का बाँधे है जो
अपने निर्मम स्वर्गराग में विवश मुग्ध कर!

एक— मैं नमन करना चाहूँगा इस भव्य मूर्ति को!

दूसरा— अति शुभ है मान!

प्रसन्न हुआ मैं मिलकर!

शिल्पी—

तीसरा— पृथ्वी के पुष्पों के फूल सा शुभ्र स्फटिक का
एक मनोरम देवालय संक्षिप्त स्वर्ग सा
श्रेष्ठि पुत्र ने बनवाया है इस प्रदेश में
अमरा के आरोहण पथ सा स्वर्ण कलश स्मित —
कीर्ति स्तंभ सा स्थापित जो भगवद् महिमा का!
मुरलीधर की दिव्य मूर्ति की शुभ मुहूर्त में
प्राण प्रतिष्ठा होगी उसमें समारोह से—
मैं सविनय आमंत्रित करता यहाँ आपको

एक— शिला कोश से प्रकट किया जिसने ईश्वर को!
मैं सहर्ष आऊँगा उस मंगल अवसर पर!

शिल्पी— प्रभु की इच्छा से प्रेरित हो और आपकी

एक— शुभ्र कीर्ति से आकर्षित मैं पुण्य घड़ी में
गृह से निकला मुरलीधर की मूर्ति लाने!
धन्य हो उठा आज आपकी अमर कला की
स्वप्न सृष्टि को अर्जित कर इस कला कक्ष में!
स्वीकृत करें कृपापूर्वक लघु नम्र भेंट यह
इस अमूल्य निधि के बदले—

कृतकृत्य हुआ मैं

शिल्पी— आज आपके भावासिक्त मधुर वचनों से!
नत मस्तक मेरा प्रणाम लें!

चिर मंगल हो!

एक—

शिल्पी— हमको भी आशीर्वाद दें! कष्ट के लिए

दूसरा— क्षमा करें इस कला कक्ष का अनुशीलन कर
आज महत् प्रेरणा मिली! हम चिर कृतज्ञ हैं!
शिल्प कला की अतुल धरोहर हैं ये कृतियाँ
श्री अकलुष सौन्दर्य आपने सृजन किया है
इस कोने से निभृत कुंज में—निखिल विश्व के
अंतर का अक्षय वैभव संचित कर श्रम से!
निर्मम पाषाणों के उर का आवाहन कर

उनमें जीवन फूंक दिया जादू के बल से—
दिया हृदय में स्पर्श चेतना का कर जागृत!

तोषरा— मूर्त कर दिया भाव स्वप्न प्रस्तर पलकों पर
रूप चेतना से मंडित कर निःस्वर जड़ का
धन्य आपके अमर शिल्प को!

शिल्पी— (हाथ जोड़कर) उपकृत हूं मैं!

(दर्शकों का प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

[विशाल मनोरम देवालय का दृश्य। मुरलीधर की मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा सम्पन्न हो चुकी है। संध्या का समय। मंदिर आरती के समारोह से जगमगा रहा है। बाहर का प्रांगण भक्तिनियों से खचाखच भरा हुआ है। मंगल-वाद्यों के साथ कीर्तन चल रहा है।]

गीत

जय मुरलीधर, जय राधावर
जय गिरिधर बनमाली
जय जन मन बनमाली !

गुंजित नीरव मुरली के स्वर
कंपित थर थर अंबर सागर,
नृत्य निरत सब मुग्ध चराचर
नृप सुर नर स्वामी
मनमोहन बनमाली !

स्वप्न मंजरित जन मन मधुबन
अपलक लोचन के वातायन
मर्म प्रीति मर्मर स अनुभव
रोमांचित उर डाली
रहस मिलन बनमाली !

निस्तल प्राणों का यमुना जल
इच्छाओं की लहरें उच्छल
डूबा मन का कंदुक चंचल
मथो वासना कालिय
मेघ बरस बनमाली !

पीतांबर छवि श्यामल तन पर
स्वर्ण रेख सी कसी निकष पर
नील गगन से लिपटी मुखर

प्रथम उषा की लाली
पीत वसन वनमाली!

जय अनंत जय शाश्वत सुंदर,
जय जलधर कोमल करुणाकर,
बरस रहे प्रणय रस निर्झर

जय प्रमुदित यशशाली
दैत्य दमन वनमाली!

एक प्रतिनिधि— जैसा भव्य प्रयोग कला का देवद्वार यह
मौन प्रार्थना सा पृथ्वी की उठा गगन को—
वैसी ही जीवंत मूर्ति है मुरलीधर की!
जिनके पावन दर्शन से इस महाभूमि का
जीवन का गौरव सहसा आँखों के सम्मुख
पुन उदय हो उठा चिर प्राचीन भास्वर!
वह वैभव का युग होगा निश्चय भारत का
जिसमें कल्पित हुआ पूर्ण व्यक्तित्व कृष्ण से
महापुरुष का! उस युग की समस्त श्री शोभा
भक्ति ज्ञान दर्शन की अद्भुत महिमा गरिमा
निखिल सूक्ष्म भावना कला कौशल का वैभव
मूर्तिमान हो उठा कृष्ण के दिव्य रूप में!

दूसरा— अभी सुनाई पड़ती जैसे वह वंशी ध्वनि
निभृत निकुंजों गिरि गह्वरों में मर्मर भरती
यमुना की भावुक लहरों में मधु मुखरित हो
निर्जन छाया वीथी पथ में जन मन हरती!
सूक्ष्म प्रीति की निश्छल धारा बहती होगी
तब इस भू पर उर में रस के अमर स्रोत नव
भरते होंगे जन मन को विस्मित विमुग्ध कर!

पूर्ण समन्वित होगा उस युग का भू जीवन
विशद सन्तुलन होगा भावों में कर्मों में !
विश्व विमोहन मुरलीधर की अमर कल्पना
लोकचेतना की शाश्वत प्रतिनिधि है निश्चय !

तीसरा— काम क्रोध से कुण्ठित भवतृष्णा से मूर्छित
आत्मा को कर मोहमुक्त मुरली की मधु ध्वनि
जो नित अन्तरतम में निःस्वर गुंजित रहती —
निज गोपन आकर्षण से मानव आत्मा को
सतत उठाती रहती स्वर्गिक सोपानों पर
सूक्ष्म भावना के नभ में सच्चिदानन्दमय !
मुरलीधर के श्रीचरणों पर आत्मार्पण कर
शान्त वृत्तियाँ हो जाती कालिय सी मर्दित
ज्ञान दग्ध हो जाता संचित कर्मों का फल
मलिन वासना से विमुक्त हो उठता अन्तर !

चौथा— मनोभूमि पर उतरे थे श्री राम मनुज की
मनश्चेतना को विदेह कर देह नीति से
मर्यादाएँ बाँध नीति की सदाचार की
पथ प्रशस्त कर गए जनों का मोह लिया मैं
इन्द्रिय ग्रस्त तमस की—जीवन की छाया का
ऊर्ध्व मनुज के चरणों पर कर दप विमुण्ठित !
मन के प्राणों के स्तर पर अवतरित हुए थे
लीलामय श्रीकृष्ण भावना के समुद्र को
मंथित कर लालसा चपल मानस पुलिनों को
निस्तल मज्जित कर, ऊर्ध्वग जीवन शोभा का
नव प्लावन भर गए धरा में —मधुर भाव में
भक्ति प्रवित कर, रस प्रवाह में डुबा जगत को !
योगेश्वर थे निरुपम पुरुषोत्तम रहस्यमय !

(भीतर के आँगन से संगीत के स्वर आते हैं)

भाव गीत

यमुना तट पर नट नागर ने
बंसी वेणु बजाई
प्राणों में ध्वनि छाई !

धेनु चराने मैं वन आई
मुरली की धुन सुन अकुलाई
डूब री मानस यमुना तट,
प्रीतिधार लहराई प्राणों।

मधु मंजरित हुई उर डाली
कूक उठी कोयल मतवाली
सिहरी देह सजा स्मृति पुलकित
प्रिय छवि री मन भाई प्राणों

जान कब भर आए लोचन
बिसर गया सुधि बुधि उन्मन मन
घिरे श्याम घन यमुना जल में
छाया सी गहराई, प्राणों

हिय में जड़ पग भूल गया मग
क्या जाने क्या सोचेगा जग
मरमी के स्वर में भी निस्वर
निर्मम व्यथा समाई प्राणों।

बंसी की ध्वनि का सम्मोहन
समझ गई भामी मन ही मन
यमुना तट की प्रिय घटना सुन
मन मधुर मुसकाई प्राणों

जब मन मोहन की मुरलीधर
मर्म प्रीतिमय मधु मुरली स्वर
गाकर यमुना तट वंशी वर
भेद न कुछ कह पाई प्राणों।

चौथा— आज एक पखवारे से इस देवालय में
गायन वादन कीर्तन है चल रहा निरंतर,
एकत्रित हो रहे उमड़ अविराम स्रोत में
भक्ति प्राण जन पुण्य स्नान करने उत्सव में।
श्रद्धा से प्रेरित हो भावों से उद्भासित
सस्मित आनन स्पंदित अंतर, हर्षित लोचन
मुरलीधर के दर्शन से पावन कर निज मन
डुबा रहे सुख दुख उर उर के रहस मिलन में!
निश्चय जन मन में अजेय विश्वास शक्ति है
नत मस्तक हो उठते जिसके सम्मुख पर्वत
दुस्तर भवसागर में जिसका सेतु बाँध कर
पार मनुज होते विघ्नों के शृंग लाँघ कर!

छठा— युग युग से करते आए जन कीर्तन वंदन
युग युग से सुनते आए मुनियों के प्रवचन—
चिर रहस्य में लिपटे धार्मिक उपदेशों के।
किंतु नहीं कुछ बदल सका जनगण का जीवन
दैन्य अविद्या अंधकार के अतल गर्त में
वैसा ही डूबा है जन मन—अंधनियति का
दास बना निर्मम विधि की इच्छा पर निर्भर!
लगता है, प्रतिमा पूजन मृत भावों का
पूजन भर है धर्म भीरु दुर्बल जन जिसको
उर से चिपकाए हैं स्वर्ग नरक के भय से!
संस्कृति और कला के जीर्ण प्रतीक मात्र जो
उन प्रतिमाओं के सम्मुख नत मस्तक होना
अपमानित करना है मानव की आत्मा को—
अपने घटवासी ईश्वर के प्रति शंकित हो!
कोई भी आदर्श नहीं जो पूर्ण चिरंतन
इस परिवर्तन शील जगत में जहाँ निरंतर
मनुज चेतना विकसित वर्धित होती रहती
प्रति युग में अपने गत जीवन को अतिक्रम कर!

सातवीं— वस्तु परिस्थितियों की ही संकलित चेतन
जिसपर जीवन मूल्य निहित अवलंबित रहते
और प्रतिफलित होती जो सौन्दर्य कला में —
वह मानव के अंतर में आदर्शों का
रूप ग्रहण कर किसी अंश संयोजित हो
बाह्य परिस्थितियों में जब परिवर्तन आता
जीवन सत्य के साथ बदलते रहते युग
इसीलिए आदर्श जो कि नैतिक सत्यों
मूर्त रूप हैं परिवर्तित होते रहते नित

पाँचवीं— अर्ध सत्य यह वस्तु पक्ष ही नहीं प्रथम
भाव पक्ष भी —जिसमें आवृत है समस्त जड़
आते ही उस की आकृति में ठीक बैठ
मानव में ढलता है इस पर वस्तु जगत
उसको निज अंत:प्रकाश में भाव ग्रथित
आकांक्षा के स्वप्नों से सीमा कल्पित कर
पर यह पर चाहती उस सूक्ष्म अमूर्त सत्य
ग्रहण नहीं कर पाता जन साधारण का
प्रतिमा पूजन का महत्व इसलिए सदा
बना रहेगा जब तक म जग के जीवन में
विकट दृष्टि से नैतिक आध्यात्मिक सत्यों
प्रतिमायें ही हैं गोचर सिद्ध होने से

प्रथम— आप मौन क्यों ? इस स्वर्गीय मूर्ति के स्रष्टा—
प्रतिमा पूजन के महत्व पर अपना मत
स्वयं समाधान करें आप ही इस विचार की

शिल्पी— यह प्रतिमा तो मात्र भाव का बाह्य रूप है
जीवन के प्रति श्रद्धा मानव के प्रति आद
आत्मों के प्रति स्नेह यही प्रभु का पूजन है

मगर रूप में वही व्याप्त है निखिल जगत में
मानव का मन ही उसका पावन मंदिर है!
उसे स्वच्छ सुंदर रखना उन्नत भावों के
सुमनों से भूषित करना उर की इच्छा को
प्रभु को अर्पित करना ही मानस पूजन है!
परा शक्ति की ही प्रतिमा है मूल प्रकृति भी
सूर्य चंद्र तारे जिसका नीराजन करते
सागर जिसके पावन पद प्रक्षालित करता
मंद समीरण जिसे डुलाता मद व्यजन नित
षट् ऋतुएँ जिसकी परिक्रमा करतीं संतत
रंग रंग के फूलों की अंजलि स्नेह भेंट कर,
ध्यान मौन रहते गिरि, नदियाँ गातीं महिमा—
उस निसर्ग की मधुर मूर्ति में दिव्य शक्ति के
नित्य रूप के दर्शन करना ही पूजन है।
एक चेतना शक्ति व्याप्त जड़ जीवन मन में
त्रिविध लोक आदर्श उसी के महत् गुणों के
मूर्त रूप हैं—जग जीवन के पोषक पूरक!
श्री शोभा आनंदमयी वह सृजन शक्ति ही
नित्य अवतरित होती रहती नव रूपों में—
विश्व विकासी मंगलमयी अनंत चेतना!

माधवी— यही सत्य है युग परिवर्तन की क्रीड़ा का
यही सत्य जीवन की नित अभिनव सीमा का!
चिर विकास प्रिय चिर सक्रिय है जग जीवन की
अमर चेतना जो युग युग में नव रूपों में
अभिव्यक्ति पाती जगती के व्यापारों में!
देश जाति मत मूल प्रकृति का अनुशीलन कर,
वस्तु परिस्थिति के अनुरूप हमें नव युग के
आदर्शों की प्रतिमा निर्मित करनी होगी
बाह्य विरोधों में भर अंतः साम्य समन्वय!
ध्वंस हो रहीं आज मान्यताएँ युग युग की

सातवाँ— वस्तु परिस्थितियों की ही संगठित चेतना
जिसपर जीवन सूक्ष्म मिलित अवलंबित रहते
और प्रतिफलित होती जो सौन्दर्य कला में —
वह मानव के अंतर में आदर्शों का भी
रूप ग्रहण कर लेती अंतः सत्याश्रित हो।
बाह्य परिस्थितियों में जब परिवर्तन आता
जीवन मन के मान बदलते रहते युगपत्
इसीलिए आदर्श जो कि नैतिक सत्यों के
मूर्त रूप हैं परिवर्धित होते रहते नित।

पाँचवाँ— अर्ध सत्य यह वस्तु पक्ष ही नहीं प्रथम है
भाव पक्ष भी —जिसमें आवृत है समस्त जड़।
अपने ही उर की आकृति में ठोंक पीट कर
मानव ने ढाला है इस जड़ वस्तु जगत को
उसको निज अंतःप्रकाश में भाव द्रवित कर
आकांक्षा के रंगों से शोभा कल्पित कर।
पर घट घट वासी उस सूक्ष्म अमूर्त सत्य को
ग्रहण नहीं कर पाता जन साधारण का मन
प्रतिमा पूजन का महत्त्व इसलिए सदा ही
बना रहेगा जन मन में जग के जीवन में।
विषय दृष्टि से नैतिक आध्यात्मिक सत्य भी
प्रतिमाएँ ही हैं सापेक्ष सिद्ध होने से।

छठा— आप मौन क्यों? इस स्वर्गिक मूर्ति के स्रष्टा —
प्रतिमा पूजन के महत्त्व पर अपना मत दें
स्वयं समापन करें आप ही इस विवाद को।

शिल्पी— जड़ प्रतिमा तो मात्र भाव का बना रूप है।
जीवन के प्रति श्रद्धा मानव के प्रति आदर,
जीवों के प्रति स्नेह यही प्रभु का पूजन है।
यह समस्त संसृति ही ईश्वर की प्रतिमा है

सार रूप में वही व्याप्त है निखिल जगत में
मानव का मन ही उसका पावन मंदिर है!
उसे स्वच्छ सुंदर रखना उन्नत भावों के
सुमनों से भूषित करना उर की इच्छा को
प्रभु को अर्पित करना ही मानस पूजन है!
पर शक्ति की ही प्रतिमा है मूर्त प्रकृति भी
सूर्य चंद्र तारे जिसका नीराजन करते
सागर जिसके पावन पद प्रक्षालित करता
गंध समीरण जिसे झुलाता मंद व्यजन नित
षड् ऋतुएँ जिसकी परिक्रमा करतीं मंगल
रंग रंग के फूलों की अंजलि स्नेह भेंट कर,
ध्यान मौन रहते गिरि, नदियाँ गातीं महिमा —
उस निसर्ग की मधुर मूर्ति में दिव्य शक्ति के
नित्य रूप के दर्शन करना ही पूजन है।
एक चेतना शक्ति व्याप्त जड़ जीवन मन में
विविध लोक आदर्श उसी के महत् गुणों के
मूर्त रूप हैं—जग जीवन के पोषक पूरक!
श्री शोभा आनंदमयी वह सृजन शक्ति ही
नित्य अवतरित होती रहती नव रूपों में—
विश्व विधात्री मंगलमयी अनंत चेतना!

पाँचवाँ— यही सत्य है युग परिवर्तन की क्रीड़ा का
यही सत्य जीवन की नित अभिनव लीला का!
चिर विकास प्रिय चिर सक्रिय है जग जीवन की
अमर चेतना जो युग युग में नव रूपों में
अभिव्यक्ति पाती जगती के व्यापारों में!
देश जाति मत मूल प्रकृति का अनुशीलन कर,
वस्तु परिस्थिति के अनुरूप हमें नव युग के
आदर्शों की प्रतिमा निर्मित करनी होगी
बाह्य विरोधों में भर अंतः साम्य समन्वय!
ध्वंस हो रहीं आज मान्यताएँ युग युग की

निखर उठें फिर सूक्ष्म शिखर नव आदर्शों के
सृजन प्राण मानव मन को उनके प्रकाश को
मूर्तिमान करना होगा नव युग जीवन में —
मानवीय संस्कृति में संयोजित कर उनको
युग विप्लव में नव्य संचरण को सचेष्ट कर !

शिल्पी— यही प्रश्न है आज कला के सम्मुख निश्चय
जो दुःसाध्य प्रतीत हो रहा कलाकार को
बहिरंतर की जटिल विषमताओं में उसको
नव समत्व भरना होगा सौन्दर्य संतुलित ! —
मानव उर की वंशी में नव स्वर संगति भर
भावपूर्ण कर निखिल अभावों के जीवन को !
नव्य सृजन की कुण्ठ व्यथा से पीड़ित कब से
कलाकार का हृदय विकल है नव जीवन की
प्रतिमा अंकित करने को सर्वांग पूर्णतम—
जनयुग की निर्मम पाषाण शिला के उर में ! —
महत् प्रेरणा का आकांक्षी है युग मानव !

पौवनी— कलाकार के योग्य महत्वाकांक्षा है यह !
आज विश्व के कोने कोने में जागृति की
सूक्ष्म शक्तियाँ कार्य कर रहीं जन के मन में
जो प्रच्छन्न अभी हैं निश्चय ही भविष्य में
नव्य चेतना निखर सकेगी जब धरती पर
नव जीवन की शोभा गरिमा में मूर्तित हो !
व्यर्थ मनुज बाहर के मरु में उसे खोजता
अंतरतम में ओत छिपा जो अमृत सत्य का
अंत सलिला धारा ही में अवगाहन कर
युग मरीचिका से विमुक्त होगा मानव मन —
आवाहन करती युग आत्मा नव प्रकाश का !

(नेपथ्य से वाद्यित संगीत के स्वर)

गीत

नव प्रकाश बन आओ!
जीवन के घन अंधकार को
ज्योति द्रवित कर जाओ!

अंतःस्मित हो मानव का मन
शांत विश्व जीवन संघर्षण
नव स्वर लहरी में जग भू का
क्रंदन करुण भुलाओ!

छाया मृत भावों का तम
माया जड़ भौतिकता का भ्रम
अंध वीथियों में जन मन की
नव किरणें बरसाओ!

घृणा द्वेष को प्रीति द्रवित कर
महानाश में अमृत स्रवित कर
अविश्वास को फिर प्रतीति में
परिणत कर मुसकाओ!

विश्व ग्लानि में नव्य रूप भर
श्री शोभा स्वर्णिम ममत्व भर
जन धरणी में जग जीवन में
मन का स्वर्ग बसाओ!

शून्य वेणु उर में नव स्वर भर
मूक व्यथा हर, नव मुरली धर,
अभिनव श्री सुषमा गरिमा में
धरणी को लिपटाओ!

तृतीय दृश्य

[शिल्पी का कला-कक्ष। शिल्पी पर्दे की ओट में अपनी अधूरी प्रतिमा का निर्माण करने में संलग्न है। उसकी शिष्या एक ओर बैठी हुई हथियारों में धार चढ़ा रही है।]

शिल्पी— (प्रतिमा का निरीक्षण करते हुए)

नई सभ्यता जन्म ले रही आज धरा पर
क्षुद्र विभेदों दूषित नियमों को जगती के
पुनः संगठित संयोजित कर जन मंगल हित
नव भू जीवन के मांसल शोभा सौष्ठव में।
पल्लवित हो रहा धरित्री का उपचेतन
गरज रहा युग भावोर्मित जन जीवन सागर
नव आकांक्षा के शिखरों में लहरा कर,—
प्लवन मग्न करने अब धरती के पुलिनों को।
डोल रहा भूकंप चेतना के भुवनों में
ध्वंस हो रहा विगत मनःसंगठन मनुज का
भू लुंठित हो रहे सौध गत आदर्शों के
छिन्न भिन्न हो रही रीति नीतियाँ युगों की
टूट रहे विश्वास अंध तारों से हतप्रभ
विगत युगों के नाम चिह्न को मिटा धरा से।

ऐसे विश्वक्रांति के युग में अंतर्नभ में
ज्योतिर्मय किरणों की रेखाओं से अंकित
एक मनोरम बिम्ब मूर्ति प्रस्फुटित हो रही
नव भावों की स्वर्ण शुभ्र शोभा में वेष्टित।
जन मन के स्वप्नों से कल्पित उसके अवयव
निखिल विश्व की आकांक्षाओं से स्पंदित उर,
प्रीति मौन निस्तल करुणा से द्रवित विलोचन

शांत सौम्य आनन थी—जिसकी पावनता के
अमृत स्पर्श से दीपित हो उठता जीवन-तम !
चिर कल्याणमयी मायावेही वह धीरे
प्रकट हो रही अंतरिक्ष में अंतर्मन के
नव जीवन की महत् कल्पना सी मूर्तित हो—
निखिल विषमताओं में भरने स्वर्ण समन्वय !
शिला फलक में अंकित करना चाह शिल्प को
रश्मि रेख उस नव्य चेतना की प्रतिमा को
मृण्मय अंगों में संवार युग सूक्ष्म स्वप्न को !
किन्तु हाय भू जीवन की निर्मम वास्तवता
बाँध नहीं पा रही मनुज आत्मा का वैभव
मिट्टी की जड़ता विरोध करती प्रति पग पर
नव प्रकाश के शोभा स्पर्शों के प्रति निष्क्रिय !
कुंठित हो उठती फिर फिर उद्भ्रांत कल्पना !

शिष्या— आप व्यर्थ उद्विग्न हो रहे अपने मन में—
भला कौन सी वह विलक्षण कल्पना रही है
जिसे आप साकार नहीं कर सके शिल्प में
अपने कला कुशल हाथों से ? सदा सूक्ष्म से
सूक्ष्म भाव भी झलक उठे प्रस्तर के मुख पर !
मैं कहती हूँ आप हृदय की धड़कन को भी
प्रस्तुत कर सकते पाहन में प्राण फूँक कर !

शिल्पी— एक बार फिर से प्रयत्न कर देखूँ बेटी
अब प्राण पाहन यह संभव जीवित हो उठे !
युग युग के जड़ संस्कारों में जड़ीभूत जो
जग भू के निश्चेतन का निष्प्राण शिलातट
जिसके अणु परमाणु बँधे निर्मम जड़त्व में
गत अभ्यासों के निष्क्रिय मानस से कुंठित—
नव्य चेतना के सक्रिय स्पर्शों से उसको
पुनरुज्जीवित करना है नव मनुष्यत्व में !
(छेनी लेकर शिला को गढ़ने में व्यस्त हो जाता है)

गीत

जग भू पर उतरो!
युग मन की पाषाण शिला को
करुणा द्रवित करो!
घृणा द्वेष से पीड़ित भू जन
दैन्य निराशा से कुंठित मन
दुख विषाद को चीर, किरणमयि
अंतर में निखरो!
स्वप्नमयी विहँसो पलकों पर,
भावमयी विलसो नव तन धर,
नव की सुषमा में मूर्तित हो
चिन्मयि मयि बिखरो!
जगतीं मन में छवि रेखाएँ
कँपतीं ज्यों शत दीप शिखाएँ,
जन जीवन की बाहों में बँध
उर का शून्य भरो!
खोलो हे युग का अवगुंठन
कबसे अपलक तकते लोचन
अंधकारमय पथ ज्योतित कर
नव पद चिह्न धरो!
नव प्रतीति में कर उर मुखरित
नव आशा से जन मन कुसुमित
भू की जड़ता को चेतन कर
जग का त्रास हरो!

शिल्पी— (प्रतिमा को ध्यानपूर्वक देखते हुए)
आह अंत मैं दृष्टि शून्य पाहन पलकों पर
मूर्त हो उठा स्वर्ण स्वप्न मानव अंतर का!
अवयव की रेखाओं में साकार हो उठा
मानव आत्मा का मोहक सौन्दर्य अप्रकाशित!

झलक उठी जन मानवता की भव्य कल्पना
विस्मय अपलक दृश्यपटी में मूर्तिमान हो !
भू जन का उज्ज्वल भविष्य आँखों के सम्मुख
उदय हो उठा वीर युगों का भव्य आवरण !
स्वर्गिक सी सुषमा में हो अवतरित शिला पर
मातृ कल्पना ने सजीव कर दिया दृश्य को !
ईश्वर, मेरा स्वप्न मनोरथ पूर्ण हो गया !

शिल्पा— (मूर्ति को देखकर साह्लाद)
जाग उठा पाषाण हृदय जीवन-चेतन हो
युग युग का जब मौन हो उठा गति से मुखरित !
कैसी जीवित भावपूर्ण प्रतिकृति उठती है
दर्पण पर बिम्बित हो तद्वत् निर्मल दृश्यपट !
शिल्पकला निज चरम शिखा पर पहुँच गई है,
प्रस्तुत यह आदर्श निदर्शन मूर्तिकरण का !
पट का यह व्यवधान हटा दूँ अब प्रतिमा से !

(पर्दे को हटाती है)

कलाकक्ष हो उठा नवल गौरव से मंडित !
मो मुहूर्त क्यों देख पा रहे दर्शकगण भी !

(दर्शकों का प्रवेश)

एक— अभिवादन ! क्या पूर्ण हो गई कला सृष्टि यह ?

शिल्पा— उधर देखिए, कलाकक्ष के मध्य भाग में
शीश शिखर ही शिल्पकला के पंख मार कर
उड़ने को उद्यत है नव चेतना स्वर्ग में !
मैं अब तक संवरण न कर पाई निज विस्मय !

दूसरा— आप सत्य कहती हैं 'यह आश्चर्य है महत्
शिल्पकला का ! मुग्ध दृष्टि अनिमेष हो उठी !
जन मन का सागर ही जीवन हिल्लोलित हो
घनीभूत हो गया अलौकिक दृश्यपटी में !

गति से अविरत गति से स्पंदित लगता पाहन
अविरत गति ही सूक्ष्म रूप हो जैसे जड़ का।
मौन टूट अब रहा मुखर जीवन शोभा का
युग भावों से भास्वासित जगती प्रतिमा!
जीवन मुद्रा पर खिल रहे घन भाव हृदय के
दृढ़ अंगों में घनीभूत सी शक्ति स्फूर्ति नव!
फूट रही युग जीवन की आशाकांक्षाएँ
जनगण के आनन से नव गरिमा मंडित हो!

(जनरव)

शिल्पा— पर, कौन आ रहे इधर श्रमिकों कृषकों के
जननायक-से? हृदय क्रांति का कम्पित करता
क्षुब्ध पुकारों से—

शिल्पी— उनको आने दो बेटी!

(जन-समूह का प्रवेश)

एक स्वर— हम भू की संगठित शक्ति हैं हम धरती की
क्रान्ति भरी उठती पुकार हैं, हम देखेंगे
आप यहाँ स्वप्नों के सुन्दर नीड़ में छिपे
कौन महत् निर्माण कर रहे जनगण के हित।

दूसरा स्वर— मध्य वर्ग की या अतृप्त वासना पूर्ति के
अर्थ नग्न कुत्सित शृंगारिक चित्र गढ़ रहे?

तीसरा स्वर—दुख दैन्य से जर्जर जब जनमन का जीवन—
कलाकक्ष में बैठ, निभृत कल्पना स्वर्ग में
आप व्यस्त हैं धन की लिप्सा से प्रेरित हो
निर्दय जड़ पाषाणों को कल्पित करने में
आत्म भाव रत जीवित जनता से विरक्त हो!
मधुर व्यंजनों से कर अपनी उदर तृप्ति नित
आत्मा के हित खाद्य खोजते आप निरन्तर,
ललित कलाओं से पोषण कर अपने मन का
संस्कारों की शोभा में उसको लपेट कर!

दूसरा स्वर— किंतु, अन्न उपजाते जो हम धरती से लड़
गढ़ते बहु प्रासाद भवन, कर्दम में सन कर
हमें चाहिए क्या न मधुर आत्मा का भोजन?
क्षुधापूर्ति करते हैं यदि हम सभ्य कला की
उन्हें चाहिए, भाव पूर्ति वे करें हमारी—
हमें सभ्यता दें बदले में और कला की
जन उपयोगी मधुर देन से जन के मन को
नव जीवन शोभा में वेष्टित करें! किंतु, उफ
अन्न वस्त्र का भी अभाव है हमको! यद्यपि
हम ही अपने भुजबल से उत्पादन करते
श्रांति स्वेद में लथपथ पालन करते जग का!
यही सभ्यता क्या इस युग की? यही न्याय है?

चौथा स्वर— कहाँ खोजते न्याय यहाँ? हम जो धरती के
प्राकृत शिल्पी हैं जो भू के निर्मम उर को
जीवन हरियाली में प्राण प्ररोहित करते
अपने श्रमपटु कर कौशल से—कल को हम ही
जन मन के शोभा शिल्पी भी होंगे निश्चय—
हम में उपजेंगे भावी स्वप्नों के स्रष्टा,
नवल प्रेरणा स्पर्शों से रोमांचित अंतर,—
नव विकसित मस्तिष्कों हृदयों के वैभव से
धरा चेतना को उर्वर करने में सक्षम!
लोक नियति निर्मायक जाग्रत् कलाकार बन
हम दरिद्रता को कर देंगे भू निर्वासित!

शिल्पी— यही समुचित स्वाभिमान है कला चेतना
लोक जागरण की कब से कर रही प्रतीक्षा!
कला अभी तक धनिकों का भूषण कर सकी
उसे वास्तविकता बनना है भू पर व्यापक!
स्वागत करता हूँ मैं जन का! आप देखिए,
मेरी नूतन प्रतिमा जन मन की दर्पण है!

दर्शक— इधर किसान खड़े हैं धरती के प्रतिनिधि-से
श्याम स्वस्थ काठी सिर पर धर उधर श्रमिक हैं
नवयुग जीवन के निर्माता हृष्ट पुष्ट तन—
निज बाहों में भूगोलक को लिए गेंद सा!
पैरों के नीचे उद्वेलित जीवन सागर
युग संघर्षण जन आकांक्षा का द्योतक है!
ऊपर जैसे नव आशा का क्षितिज खुल रहा
नील मर्मरित पल्लव द्रुम के अंतराल से!

जननायक— चमत्कार है निश्चय अद्भुत शिल्पकला का!

दर्शक— ये अजेय हल बैल लोक जीवन के संबल
जो धरती की निर्मम जड़ता को विदीर्ण कर
प्राण प्ररोहों से पुलकित करते भू का उर!
यंत्र चकित हैं उधर, प्रगति सूचक नव युग की
इधर हथौड़ा विश्व विषमता चूर्ण कर निखिल
नव समत्व भर रहा शिराओं में जीवन के!

जन गीत

जन धरणी का बल हैं हम
जन मन का संबल हैं हम!
साथी सबल हथौड़े हँसिया
जिसके कर्मठ कला कुशल!
पृथ्वी का पैगंबर बन हल आया
नवल सभ्यता का प्रभात संग लाया
हल ने चीर धरा का सीना
मानव का घर द्वार बसाया!
स्वर्ण धरा का बल हैं हम
जनता का संबल हैं हम
साथी सबल हथौड़े हँसिया
जिसके कर्मठ, कला कुशल!

तोड़ नियति को ठोंक पीट कर प्रतिक्षण
श्रम से निर्मित किया महत् नव जीवन
चुन चुन कर नित दस्यों के स्वर्णिम कण
हँसिये से हँस भरा मांग में भूषण !

कठिन तपों का फल हैं हम
श्रम कर्मों की कल हैं हम
जीवन की रोटी धरती का
राजा अटल अचल हैं हम !
मातृभूमि का बल हैं हम
जनगण का संबल हैं हम
भाई सगे हथौड़े हँसिया
जिसके कमठ बना कुसुम !

धन्य हो उठा कला कण इस जन उत्सव से !

दर्शक— (प्रतिमा को लक्षित कर)
काल चक्र यह घूम नव्य युग परिवर्तन को
सूचित करता अंतरिक्ष मे नव युग का रवि
उदय हो रहा जिसकी स्मित किरणों से मंडित
धरा स्वर्ग के मध्य खड़ी सोमार्क सेतु पर
नव्य चेतना की प्रतिमा शोभित है निरुपम !
स्वर्ण शालि यह लिए वाम कर में दक्षिण कर
अभय दान दे रहा वरद मुद्रा मे उठ कर,—
विजय ध्वजा सा अंचल फहरा रहा क्षितिज में !
नीरव करुणा ममता से स्पंदित वक्षस्थल
विश्व शांति है बरस रही स्मित मुख मंडल से
ध्वंस भ्रंश हो सड़ी रीतियों के जड़ बंधन
चरणों पर हैं पड़े छिन्न शृंखला कड़ी-से !

शिल्पी— लोक मोहिनी विश्व शांति की मनोमूर्ति यह
अभिनव श्री शोभा गरिमा में जाग रही जो
धरा क्षितिज पर जन जीवन के वैषम्यों को
निखिल समन्वित करने निज निःसीम वक्ष में !

शाश्वत करुणा यह जिसके प्रिय संकेतों पर
अमर प्रेरणाएँ भरती रहतीं धरती पर,
नव नव आदर्शों में मूल्यों में कल्पित हो !
आज बहिर्मुख बिखरे जन भू के जीवन का
अंत केन्द्रित अंत संयोजित कर फिर से
नव समत्व में बाँध रही यह जीवन मांसल
ऊर्ध्वग व्यापक लोक चेतना में विकसित हो !
मानव केन्द्रिक है जीवन का सत्य चिरंतन
मानवीय महिमा में मूर्तित हो सर्वोत्तम
युग जीवन के संघर्षण को अमृत स्पर्श से
नव प्रभात में बरस रही यह स्वर्णिम चेतन !

कुछ स्वर— निश्चय यह जन के मन मंदिर की प्रतिमा है
जन आकांक्षा की प्रतीक जन जीवनमय है !
सामूहिक चेतना हो उठी मूर्तित इसमें
शक्ति स्फूर्ति विश्वास भरेगी यह जन मन में !
हम इसके हित प्राणों का बलिदान करेंगे
भू जीवन में प्राण प्रतिष्ठित कर इसकी छवि
निज कर्मों में मूर्त करेंगे इसका वैभव ! —
युग युग तक गाएँगे जनमन इसकी महिमा !

दर्शक— विश्व शांति की अमर चेतना की चिर जय हो !
कुछ स्वर— नव युग जीवन की शोभा प्रतिमा की जय हो !
दर्शक— युग निर्मम पाषाण शिला में जिसने अभिनव
प्राण भर दिए निज शाश्वत अंत प्रकाश से —
जन जीवन की मातृ चेतना की चिर जय हो !
कुछ स्वर— लोक शक्ति की जय हो नवयुग श्री की जय हो !

समवेत गीत

जयति जयति मातृ मूर्ति
शांति चेतने !

जयति लोक शक्ति लोक
मुदित चेतने!
नव युग जीवन प्रभात
निखरी तुम ज्योति स्नात
स्वर्ण रश्मि स्फुरित गात
भास्वर वसने!

धरा रतन बना गान
हृदय स्वप्न मूर्तिमान
गूँज उठे मूक प्राण
जन सुख धामने!

सफल हुए योग ध्यान
सफल भक्ति कर्म ज्ञान
खिले मनस् कमल म्लान
भव तम मथने!

बद्ध भाव हुए मुक्त
मानव मन प्रीति युक्त
शांत रक्त पंक युद्ध
मति प्रिय चरणे!

बरसे हिम शुभ्र शांति
निखरे फिर दिव्य कांति
भू मन की मिटे भ्रांति
जनमन शरणे!

ध्वस-शेष

(नव जीवन निर्माण का स्वप्न)

वृद्ध
युवती
पुष्प
प्रकृति
नागरिक
सैनिक
द्रष्टा
प्रतिनिधि

प्रथम दृश्य

[विस्तृत राजमार्ग : डंके की चोट के साथ ध्वनिपूरकों (लाउड स्पीकर) द्वारा राजघोषणा हो रही है। एक ओर से कालवृद्ध का प्रवेश, जो शांति का-सा प्रतीक लगता है। वृद्ध ध्वनिपूरकों के घोष से त्रस्त होकर कानों पर हथेली लिए, राजमार्ग के किनारे एक बड़ी सी कोठी के अहाते में घुस जाता है।]

(राजघोषणा)

शांत रहो हे भूजन व्यर्थ न धैर्य गँवाओ,
विश्व युद्ध की आशंका मन में मत लाओ!
आतंकित मत हो जो जग में झूठा रव भय
मिथ्या अफवाह फैलाएँगे राजाज्ञा से
दंडित होंगे 'सावधान सब जन हो जाओ'
शांत रहो हे लोभी महँगाई न बढ़ाओ'
राजाज्ञा यह सब जन सावधान हो जाओ!

(डंके की चोट)

वृद्ध— (कमरे में प्रवेश कर)
कहाँ आ गया हाय न जाने राह भूल कर,
भटक गया बाहर के जग में! "ठीक कहा है
भूल भुलय्या यह दुनिया! धोखे की टट्टी
नई सभ्यता! "इह संसारे खलु दुस्तारे
कृपया पारे पाहि मुरारे! भज गोविन्दं
भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते! अह,
जाने कैसी धूम मची है राजमार्ग में!"
बहरा हो जाऊँगा मैं इन ध्वनि यंत्रों के
विकट नाद से, विस्फोटक-से फूट रहे जो!

युवती— (उठकर)
शांति! "युद्ध का भय फैलाते आप नगर में
विस्फोटक के फटने का मिथ्या प्रचार कर"

दंडनीय अपराध हो चुका है यह मौखिक
राजाज्ञा है।

वृद्ध— (घबराकर)

क्षमा कर अपराध देवि मैं
बाहर के कोलाहल से मन में घबरा कर
अनुमति लिए बिना ही अंदर घुस आया हूँ।
धक धक करता हृदय नगर की रेल पेल है।
उफ़ कैसा जन आंदोलन कैसी हलचल है।
यही हाय नागरिकों का संस्कृत जीवन है?

युवती— (सहास्य)

वयोवृद्ध हैं आप व्यर्थ यों विचलित मत हों
शांत सुस्थ हो उधर बैठ जाएँ आसन पर।

वृद्ध— (स्वस्थ होकर)

आप कौन हैं देवि यहाँ मैं कहाँ आ गया?
समाचार पत्रों का कार्यालय है यह क्या?

युवती— नहीं पिता यह युग का मन है! वैसे इसको
कार्यालय ही समझें।

वृद्ध— (साश्चर्य) ईश्वर!

युवती— विद्य धनी की
नई सभ्यता हूँ मैं जिसके संकेतों पर
निखिल विश्व जन नाच रहे हैं मंत्रमुग्ध हो।

वृद्ध— (विस्मय विमूढ़)

क्या कहती हो बेटी यह क्या युग का मन है?
टूटे फूटे दीमक के खाए ग्रामों का
धूम भरे भद्दे कागज पत्रों में लिपटा
कटे छँटे अखबारों के पन्नों सा बिखरा
बड़े बड़े खातों भारी भरकम पोथों से
भरा इमारत युग का मन है? रोक भुकाए

जीर्ण पुस्तिकाओं के बोझों से !! सच कहती हो ?
अस्तव्यस्त 'कूड़ा कचरा' यह युग का मन है ?

युवती— पिता यही युग का मन युग मानव का मन है !
आप वृथा आश्चर्य मत करें !

वृद्ध— (सिर हिला कर)
सर्वनाश है !!

युवती— इसे अजायबघर समझें या चिड़ियाखाना !
इसके सैकड़ों खानों में प्रतिदिन की चौड़ी
घटनाएँ हैं ठुँसी हुई, सब छोटी मोटी
देश विदेशों की—धरती आकाश सिन्धु की !
जग के क्रिया कलापों का भंडार यह वृहद्—
आप इसे गोदाम कहें या कूड़ाखाना !
(वृद्ध सिर हिलाता है)
पर, यह जीवन की कुत्सित कटु वास्तवता का
इसमें निर्मम परिचय संचित है चिर् व्यापक !
जीवन संघर्षण का तीखा कड़ुआ अनुभव
यदि यह युग युग का घबराया विस्मृत मन
बड़े यत्नपूर्वक संरक्षित किया गया है
इन विपन्न खानों में जड़ अवसाद से भरे !

वृद्ध— कैसा रिक्त प्रदर्शन लोभी बौद्धिकता का !!

युवती— आज भयानक गूँज यहाँ जो सुनते प्रतिक्षण
समाचार यंत्रों के हलचल की ध्वनि है वह
वहन कर रहे जो संवाद विविध देशों के
मनुज नियति पर दाँत किटकिटा क्रोध क्षोभ से !
वायु मार्ग से सिन्धु मार्ग से भूमि मार्ग से
निखिल विश्व जीवन का मन का स्पंदन कंपन
अविरत वाहित हो आंदोलित करता रहता
आज पराजीवी मनुष्य के आहत मन को—
जर्जर जो हो रहा सतत विद्युत दंशन से !

वृद्ध— (कम्पित स्वर में)

हाय अभागे मानव की ऐसी विडंबना ! !

युवती— भू विस्मृत हो गया पिता मानव का अंतर,
उधर ज्ञान अब रूस चीन जापान में कहीं
कब क्या है हो रहा विविध भू के भागों में !
अब लंदन न्यूयार्क पैठ कानों के भीतर
भनभन करते रहते घरों के छत्तों-से
पेकिंग मास्को सब ओठों पर हैं जन जन के —
धरा आमलक सी करतल में सभ्य मनुज के !

वृद्ध— क्या कहती बेटी ये दुर्मुख कल निरंतर
दूषित जंतुओं सी विषमय फुफ्कार छोड़ती ?
भुनगों सी भुनभुना दादुरों-सी टर्रा कर !

युवती— विद्ध पक्षियों सी ये अपने पंख फड़फड़ा
आर्तनाद करतीं अब आशा ठोंक पीट कर—
कँप कँप मन में मानव मन की निर्ममता से !
ये कहती हैं पिता आज सब देश धरा के
लोक सभ्यता की संस्कृति की मानवता की
उच्च पुकारें भला मोह आवरण डाल कर
शुभ शांति की छद्म ओट में महाप्रलय का
घर तांडव रच रहे, भयंकर अणु दानव को
पाल पोस कर, समर संगठित कर जन-बल को !

वृद्ध— (अनुताप से)

अहा आसुरी हाथों में पड़ गई शक्ति फिर ! !

युवती— विगत युद्ध में प्रजातंत्र की रक्षा के हित
जूझे थे भू राष्ट्र रक्त में स्नात हुआ कर,
दर्प दमित करने दुर्मद फासिस्ट शक्ति को
और सदा के लिए समापन करते रण को !
किंतु आज सब जन मंगल के आकांक्षी बन

विश्व शान्ति के हेतु खींचते भाषण उद्यत
और बढ़ाते जाते सैनिक शस्त्रों का बल —
अणुबम के प्रतिबम के बना विजय मोदक वह !
आज शान्ति के पीछे पागल है अशान्त जग ! !

वृद्ध— देख रहा हूँ बेटी मैं मन की आँखों से
अनति दूर, भीषण धूमिल युग-क्षितिज जगत का —
कृष्णकाय पंखों में उड़ कर चला आ रहा
महानाश का घन भू पर शोणित बरसाता ! !
शान्त पाप हों जग के ! मेरे वृद्ध उदर में
अवचेतन का गह्वर कभी उमड़ उठता है !
पर मानव शासक है भू की अन्ध नियति का
पिघला सकता लौह वज्र की निर्ममता वह
और बदल सकता भू पथ जीवन प्रवाह का !
देख रहा मैं दैत्याकार प्रलय का बादल
उदय हो रहे स्वर्ण बिम्ब पर नव मोहित हो
दौड़ रहा है उसे लीलने किन्तु साथ ही
उसकी स्वर्णिम आभा में चेतना द्रवित हो
युग प्रभात की नव शोभा में सुलग रहा है !
समझ रहा हूँ मैं युग के कष्ट संघर्षण को
ऊर्ध्वग समदिक संचरणों के बीच खिंचा जो
आज धरा में भौतिक आध्यात्मिक विप्लव बन !
ध्वस्त हो रहीं जीर्ण मान्यताएँ जन मन की
बदल रहा जग जीवन के प्रति दृष्टिकोण अब
छँटता जाता मन संशय का घना कुहासा
जन्म ले रहा मनुष्यत्व नव अन्तरिक्ष में —
मनुज जाति को भू जीवन का नव वर देने !
विजयी होगा मानव यान्त्रिक युग दानव पर,
नवल वास्तविकता निखरेगी भौतिकता से —
नव आध्यात्मिकता का स्वर्णिम संजीवन पा !

युवती— पिता आपके वचनों को सुन कँप उठता मन
और हर्ष गद्‌गद हो उठता कातर अन्तर।
रक्त स्वेद के पंक में सनी आज मनुजता
ज्ञात नहीं कब होगा भू पर वह स्वर्णोदय।

वृद्ध— नियत समय पर सब कुछ हो जाएगा बिटिया
निकट आ रही धीरे अब निर्दिष्ट घड़ी वह
जो मानव अन्तर मे कल्प की भस्म से धुली
धैर्य धरो सब मंगल होगा। अच्छा बेटी
अब मैं जाता हूँ थोड़ा विश्राम करूँगा।

(वृद्ध का प्रस्थान)

(राजमार्ग पर नगाड़े की चोट के साथ दूर से आते हुए राजघोषणा के स्वर सुनाई देते हैं।)

शान्त रहा है भूपन व्यर्थ न धैर्य गँवाओ
विश्व युद्ध की आशंका मन में मत लाओ!
शान्त रहो सब झूठी अफवाहें न उड़ाओ
राजाज्ञा यह सब जन सावधान हो जाओ!

द्वितीय दृश्य

[विध्वंसयुक्त भीम भयद वाद्य संगीत । एक विशाल नगर का खंडहर । नेपथ्य में अणु-विस्फोटकों के छूटने की भयानक ध्वनि । पृष्ठभूमि के पट पर महा ध्वंस की विकराल छाया पड़ी है । अग्नि की लपटों में लिपटे रंगीन धुएँ के बादल उमड़ रहे हैं । सुदूर से आहत गीत के समवेत स्वर धीरे-धीरे स्पष्ट होकर, सुनाई देते हैं ।]

गीत

प्रलयंकर हे
डम डम डम डमित डमरु
दुर्दम स्वर हे !

धधक उठी नभ ज्वाल
फूँक उठा उरस् व्याल
सहक रहा विष कराल
मथ मथ हर हे !

उगल रहा अग्नि व्योम
रच रहा विनाश होम
घुमड़ रहा तिमिर तोम
महर हहर हे !

ध्वंस धाम भू दिगंत
एक चूर्ण हुआ अंत
भार मुक्त भव मर्णंत
जय जित्वर हे !

भस्म स्वार्थ कलुष शोक
व्याप्त अमर धाम लोक
निखर रहे भव्य भाव
विश्वंभर हे !

भौतिक मद हुआ चूर,
मानस भ्रम हुआ दूर,
चेतन में उठा पूर
शिव शिवतर है!

[अंतरिक्ष में पुरुष और प्रकृति का प्रवेश पुरुष ज्योति-रश्मियों से आवृत प्रकृति इंद्रधनुषी आभा से वेष्टित है।]

प्रकृति— देख रहा दुःस्वप्न हाय क्या धरती का मन!
महाध्वंस सा छाया कैसा घोर चतुर्दिक?
गहरा रही प्रलय की छाया घन धरणी पर
अँधियाली के डाल भयानक भ्रम आवरण!
संक्षोभित हो उठा धरा चेतना सिन्धु क्यों
प्लावित करने भग्न प्राण मन के पुलिनों को?
नील सरोरुह सी कुम्हला कर म्लान दिशाएँ
महाशून्य की पलकों सी मुँद रहीं तमस में!
लील रहा घन अंधकार भयभीत ज्योति को
छिन्न भिन्न कर किरणों के झीने सतरँग पट
धुँधली सी पड़ रहीं रूप रेखाएँ जग की
ढाँप रहा क्या विश्व ग्लानि से निज विपण्ण मुख?
ध्वंस भ्रष्ट हो रहे सघन जड़ मूर्तों के
समाविष्ट सा भाव हो रहा स्थूल जगत क्यों!
(विप्लव-सूचक वाद्य संगीत)
प्रलय बलाहक सा घिर घिर कर विश्व क्षितिज में
गरज रहा संहार घोर मंथित कर नभ को
महाकाश का मर्म चीर निज अट्टहास से
शत शत दारुण निर्घोषों में प्रतिध्वनित हो!
भयभित भीषण वज्र कड़क उठते अंबर में
लप लप तड़ित शिखाएँ टूट रहीं धरती पर,
महानाश किटकिटा रहा कटु लौह दंत निज
विकट धूम्र वाष्पों के श्वासोच्छ्वास छोड़ कर!

रँग रँग के लपटों की जिह्वाएँ लपका कर
हरित पीत आरक्त नील ज्वालाओं के घन
घुमड़ रहे विद्युत् घोषों के पंख मार कर
ज्वलित द्रवों के निर्झर बरसा अग्नि स्तम्भ-से !
धू धू करता ताम्र व्योम धू धू जलती भू
धू धू जलतीं दिशा उबलता धू धू सागर
भभक रही भू की रज दहक रहे गत प्रस्तर
झुलस रहे वन विटपी धधक रहा समस्त जग !

(महाविध्वंससूचक वाद्य संगीत)

अग्नि प्रलय क्या हाय भस्म कर देगा मनु की
इस सुन्दर मानसी सृष्टि को जिसे जल प्रलय
मग्न नहीं कर पाया दुस्तर महा ज्वार में !
बिखर रहीं छायाकृतियों सी कैसी भू पर?
प्रेत लोक बन गया आज क्या मर्त्य लोक में !
स्वप्न बुद्बुद-से ओझल होते ग्राम पुर नगर
चित्रित हो यह माया पल पल छाया पट पर !
भूतों का निर्मित घनत्व गल तड़ित् स्पर्श से
धूम वाष्प बन कर विलीन हो रहा निमिष में !
क्या स्मृति में ही शेष रहेगी ध्वंस सृष्टि अब
रूप स्पर्श रस गंध शब्द गुण से विहीन हो?
कैसे आया महानाश इस प्रबल वेग से?
हाय कौन सा महादैत्य वह क्रूर नरक से
नष्ट भ्रष्ट करता निसर्ग को पदाघात से !!

पुरुष— महिषासुर, तारक वृत्रासुर से भी भीषण
महाकाय यह पशु दानव उड़ रहा गगन में
धूमिल देह फुला प्रचंड चलते बाणों सा
हिमाकार पावक के पर्वत सी रोमांचक !
जड़ भूतों की मूल शक्ति से अनुप्राणित हो
उगल रहा वह जलते द्रव्यों के ज्वलन घन !

निर्गत कर मथुनों से शत विषमय फूत्कारें
दारुण गर्जन से दिक् कम्पित कर अनन्त को !
घन घन तड़ित् प्रपातों सा वह टूट व्योम से
रौंद रहा जन भू को निर्मम लौह पदों से
त्रस्त ध्वस्त कर क्षण में जड़भूतों के अवयव
चूर्ण चूर्ण कर अडिग भूधरों के दृढ़ पंजर !
मदोन्मत्त वह विकट हास्य करता विस्फारक
महानाश का कर ताण्डव रव त्रस्त भुवन में —
विद्युत शूलों से विदीर्ण कर धरा वक्ष को
ध्वंस भ्रष्ट कर निखिल सृष्टि को महाक्षय से !
त्राहि त्राहि मच रही अवनि में गगन पवन में
त्राहि त्राहि कर रहे सकल जल थलचर नभचर,
दैव दैव वाली आर्त नरों की भग्न पुकारें,
ध्वनि की गति से कहीं प्रखर है वेग दैत्य का !

(विप्लव नर्तन)

प्रकृति— क्या होगा तब देव हाय इस मृत सृष्टि का
रूप रंग रेखामय मेरी निरुपम कृति का ?
मुग्ध प्रेम के पलकों पर सौन्दर्य स्वप्न सी
मोहित करती रही सदा जो स्वर्ग लोक को !
विश्व प्रथम के सृजन हर्ष से पुलकित होकर
सूक्ष्म स्थूल के छायातप को गुम्फित कर नित
जिसमें मैंने अपने रहस कला कौशल से
सीमा में निस्सीम अचिर में बाँधा चिर को
मृत्यु तमस में गूँथ अमरता के प्रकाश को
चेतनता को सर्व ध्वनित है किया शब्द में !
अपने उर के रक्त-दान से जिस निसर्ग का
युग युग से अविराम स्नेह श्रम से सिंचित कर
विकसित मैंने किया नित्य नव श्री सुषमा में
रंग गुणों के सतरंगे ताने बाने भर कर !

(सृजन आनन्द द्योतक वाद्य संगीत)

कैसे प्रहसित हुई नीलिमा मौन गगन की
धरती को रोमांच हुआ जब हरियाली में
कैसे नाच उठीं सागर उर में हिल्लोलें
अवचनीय है मर्म कथा उस रहस सृजन की!
मुझे याद है सुधा कलश सा पूर्ण चंद्र जब
रजत हर्ष से सजग उठा था प्रथम उषा के
मुख पर सहसा जब लज्जा की लाली दौड़ी
इंद्रधनुष का सेतु टँगा जब फेनिल नभ में।
अभी अभी तो फूलों के चपलक दृग अंचल
आकांक्षा से रँगे स्वप्न भावनावेश में
समा सकी प्राणों की आकुल सुरभि न उर में
कोयल का आवेग स्वरों में फूट पड़ा था!

(करुण वाद्य संगीत)

कैसे मैं अमरों की इस प्यारी संसृति का
देख सकूँगी करुण ध्वंस आसुरी शक्ति से
जिसको मैंने मां की मृदु ममता क्षमता से
सतत सँवारा निज अंतर के निभृत कक्ष में!
तड़ित् कोष से विघटित हो भौतिक विज्ञान सम
बाष्प धूम बन तितर बितर हो रहा शून्य में
खौल रहा अणु विगलित जड़ द्रव्यों का सागर
सूर्य चंद्र ज्यों टूट पेंच गया हो धरती में!
उमड़ रहे दुर्धर्ष पूर्ण उच्छ्वास विपैसे
धरा मर्म की अग्नि फूट आई है बाहर,
गूँज रहा यह महामृत्यु संगीत चतुर्दिक
चकाचौंध में बिखर रहे नक्षत्र पुंज हों।
उमड़ रहे दैत्यों-से दुर्धर धरा गर्भ से
हिल्लोलों-से उठ गिर, क्षण भर में विलीन हो।
महा प्रबल अणु के विघात से दीर्ण धरित्री
खंड खंड हो रही रिक्त मिट्टी के घट सी!

(विकट प्रलयसूचक वाद्य संगीत)

कैसे हाय रहेगा विद्युत् ताड़ित भू पर
कोमल मांसल शोभा देही दुर्बल जीवन
जिसके मुख पर खेला करती मुकुलों की स्मिति
चितवन में पलती ओसों की मौन सजलता
जिसके उर में स्वर्ग धरा का चेतन वैभव
क्रीड़ा करता रहता भावनाओं में शोभित।

जो जीवन सौन्दर्य जहाँ तरु के पत्ते भी
मस्त नित्त शाश्वत सुख की नीरव गति लय में
निज नयनों में मूँद विश्व की थी सुन्दरता
स्वप्नालस पलकों से मौन मौन प्रेम मग्न हो!
जो विराट् सौन्दर्य निभृत जिसके अंतर में
शत रवि शशि ताराग्रह शोभा स्पंदित रहते
उगा झाँकती कोमल स्वर्ग वातायन नभ का
रजत चंद्रिका शुभ्र शांति बरसाती भू पर!
हाय आज क्या विधि के निष्ठुर भ्रू विलास से
मुरझा जाओगे तुम असमय भूमिसात् हो?
जीव जगत की मनुज लोक की दुर्लभ शोभा
लुप्त निमिष हो जाएगी कटु काल गर्भ में?
जीवन की चेतना नष्ट हो जाएगी क्या
निश्चेतन के अप्रकेत तम में विकीर्ण हो!!
किसने जन्म दिया इस दुर्मद प्रभु दानव को
कौन जन्म की कोख रही वह विश्व घातिनी?
किसने विष संहार बुलाया जन धरणी पर,
कहाँ कौन वह नारकीय भू जीवन द्रोही!!

पुरुष— कातर मत हो प्रकृति तुम्हें यह मर्त्यों की सी
करुण क्लीवता नहीं सुहाती शांत करो मन।
भूत प्रलय यह नहीं आज यह मन क्रांति है
आरोहण कर रही सभ्यता नव शिखरों पर।

अंतर्मन की ही विभीषिका बाह्य जगत पर
प्रतिबिम्बित हो रही भयावह, आज प्रताड़ित
भौतिक अणु यह नहीं दलित मानव आत्मा का
न्याय कोष ही टूट रहा पावक प्रपात सा
जीर्ण धरा मन के खंडहर पर जो युग युग से
मनुज द्वेष की कुत्सित भित्तियों में विभक्त है!
आज युगों के रुद्ध मूक मानव अंतर का
विकट नाद ललकार रहा नित मनुष्यत्व को
संघर्षण चल रहा घोर मानव के उर में
यह विराट् विस्फोट उसी का धूम पुंज है!

[स्वार्थ लोभ आदि की बौनी कुरूप छायाकृतियाँ कुत्सित चेष्टाओं का अभिनय करती हैं जिनके ऊपर एक विराट् घन की छाया धूसर चोट करती है।]

मानव ही है सर्वाधिक मानव का भक्षक
सीमित मद से बुद्धि भ्रान्त युगजीवी मानव
दानव बन कर आत्मघात कर रहा अंध हो!
शोषक शोषित में विभक्त जब युग मानवता
जाति पाँति में वर्ग श्रेणि में खण्ड खंडित
धनिकों का श्रमिकों का धन बल का जन बल का
यह अंतिम दुर्धर्ष समर है विश्व विनाशक —
सामूहिक संहार तिलक विप्लव है जिसका!
जाग रहे हैं आज युगों के पीड़ित शोषित
दैन्य दुःख के बद्ध पंजर, जब युग चेतन हो
कर्म कुशल जग जीवन के श्रमजीवी शिल्पी
लोक साम्य निर्माण हेतु सब एक प्राण हों!
टूट रहीं जड़ लौह शृंखलाएँ जनगण की
भू रज जो थी पावक कण हो रहे प्रदीपित
आज रुद्र निज अग्नि चक्षु फिर खोल प्रज्वलित
भस्म कर रहे भू का कल्मष दृष्टि ज्वाल से!

अवचेतन के मनोज्ञान से पीड़ित मानव
अवरोहण कर रहा तिमिर के अतल गर्त में
यत्नों की आसुरी शक्ति से बन का अंतर
बिखर रहा जीवन प्रमत्त हो बहिर्जगत में !
रूढ़ि रुग्ण नैतिकता से आक्रांत चेतना
देख नहीं पा रही प्रगति का पथ विभ्रम में
मानव का ही हृदय-क्षोभ अणु विस्फोटक बन
महानाश का आवाहन कर रहा धरा पर !
संस्थाओं में बद्ध संगठित ऊपर क्षुधा है
धधक रहा है ऊपर काम अवचेतन का तम
क्षुधा काम से दीर्ण क्षीण हो रोग चेतना
आरोहण के विमुख अस्तनी अधोमुखी हो !

(सभ्यता का विनाशसूचक वाद्य संगीत)

देखो प्रिये विराट् भीष्म सौन्दर्य नाश का
अद्भुत भी शोभा है दारुण महाध्वंस की
महा ज्वाल सा शत सहस्र फन तान गगन में
महानाश फूत्कार भर रहा बद्ध कोप कर !
गरल फेन के सघन महकते धूमिल बादल
महामृत्यु के कुहास भार दिशाओं में बह
ध्वाड़ रहा धुआ कँचुल भीषण अंधकार की !
शत शत बाधाएँ, बड़वानल की ज्वालाएँ
चाट रही पहनों गिरियों सागर लहरों को
सुरंग स्फुलिंगों की फुहार में भू को बिखरा —
भर भर पड़ता चकित चकित हो तारापथ क्यों !
घोर बवंडर, प्रबल प्रभंजन अट्टहास भर
पंख प्रलय वैत्यों से उड़ कर, निखिल भुवन को
कुचल रहे निज मृत्यु मत्त उद्धत टापों से !
धूम धूम बन निखिल भूत घूमते प्रलय के
विकट भँवर में चक्राकार घुमड़ भंवर में !

उद्गम रहे पर्वत कंदुक-से घूम भ्रष्ट हो
कँपते अंबर चरण खिसकते गर्व शिखर गिर
फूट रहे निर्झर निपात घन तड़ित् स्खलित हो
विगलित प्रस्तर खंडों के बाष्पों से फनिल।
उमड़ रहा अंबुधि घन फन बल स्तंभों में उठ
हिल्लोलों पर कल्लोलें करतीं आरोहण
बाष्प धूम बन छिटक रहे सतरंग जल के कण
स्फीत सीकरों में सर्पिल सर्पों-से शोभित!
भूमि कंप घन दौड़ रहे क्षत धरा-वक्ष पर
तिमा अस्थियों को मांसल रज को बखेरते
फट फट पड़तीं ज्वालामुखियाँ विकट कोप कर
द्रवित रक्त मज्जा उगलती धरा उदर से—
हृदय क्षोभ ज्यों उगल उसासों में धमनी में
घुल रही हों नभ के मुख पर घोर घृणा से!
प्रभु लपटें फुफकार भरी जीभें चटका कर
आत्मसात् कर रहीं पदार्थों के तत्वों को
ज्वलित द्रवों के पर्वत टूट रहे पृथ्वी पर
गहरे गर्तों में विदीर्ण कर धरा-वक्ष को।
सिंह गुफाओं में दहाड़ते महात्रास से
गज चिंघाड़ते जल सीकर बरसा सूँडों से
दीप्त धूम भृंगों से आहत झपट कूदते
गिर गिर पड़ते विहग रुदन करते कपि काँप काँप!
विचलित मत हो प्रिये संवरण करो व्यथा को
यह केवल दुःस्वप्न मात्र है युग के मन का
तुम त्रिकाल दर्शिनी शक्ति हो मेरे उर की
देख रही हो केवल संभावित भविष्य को!
अविनाशी है तत्व अखिल अविनाशी है हम
अविनाशी है अमर चेतना भर जीवों को
नाश नहीं होता विकास प्रिय अमृत सत्य का
मिथ्या का संहार अवश्यंभावी जग में!

पुन: निभृत नेपथ्य लोक में निज कौशल से
नवल सृष्टि तुम सृजन करोगी महाकाश से—
परा शक्ति के महानंद से अभिप्रेरित हो!
भागो हम तुम सब हो जावें अब परोक्ष में!

(अस्त-व्यस्त वेश में सहसा भयभीत नागरिकों का प्रवेश)

दौड़ रहे धा प्रलय धरा का जल चीखते
रौंद रहीं लपटें पावक के भूधर पग धर
टूट पड़े सब नरक धरसते खोल मुँह इव
छूट गए रौरव के भूत पिशाच प्रेत ज्यों!
कड़ कड़ करते भूड़ वज्र फट फट पड़ते सिर,
रक्त मांस मज्जा उड़ते बन धूम भाप बन—
फूट गया पृथ्वी के भीषण पापों का घट!!

सुंज पुंज मांसल तन पल में होते ओझल
चटक अस्थि पंजर क्षण में मिलते भूरज में!
तंतु-जाल सी त्वचा सिहरती झुलस ताप से
छिन्न पसलियाँ बिखर टहनियों सी पतझर की
चरमर जल उठीं पल में सद मोम शिखा सी!
चीत्कारें करतीं चीत्कारें छूट कंठ से
गूँज प्रतिध्वनियों सी तत्क्षण देह मुक्त हो
बाल वृद्ध स्त्री पुरुष युवक भयभीत निरीह बन
निर्मम वेदी पर चढ़ते दारुण विनाश की!
महामृत्यु मुँह फाड़ भयानक नरक गुहा सा

निगल रही भू को साँसों में खींच मसक सी—
फाँके मुँह गिर नगर लोटते धरा गर्भ में
गर्तों में धँस उखड़ स्फीत धूमिल शिखरों में!
छायाभों-से काँपते उड़ते—शून्य पुरों के
भस्म शेष प्रासाद चीखते खड़े यथावत्—
घूम रहे भू प्रांत भँवर में पड़ी नाव-से!

छाई ओर तुमुल विभीषिका घन धरणी पर
बरस रहीं पावक धाराएँ रक्त सूर्य से !
भय विभीत हो रहा भयंकरता से अपनी
भगदड़ हो मच गई प्रकृति के तत्त्वों में ज्यों—
भाग रहा जीवन अपनी ही छाया से डर,
निज अंतिम चरणों पर लँगड़ाता डगमग डग !

(तेजी से प्रस्थान)

(सैनिकों तथा श्रमिकों के वेश में कुछ लोगों का प्रवेश)

कुछ स्वर— जूझ रहे मनु के मानव से भू के कणकण
जूझ रहे हैं महानाश से अपराजित जन
अब निसर्ग के तत्त्वों ने अपना अदम्य बल
जन मन में भर दिया मनुज की मांस पेशियाँ
पर्वत सी उठ रोक रहीं दुर्धर्ष शत्रु को !
नाच रहा जन के शोणित में जीवन पावक
दौड़ रहीं उन्मत्त शिराओं में शत विद्युत्
बहते हैं उनचास पवन उनकी श्वासों में !
भीत नहीं होगा मानव इस महानाश से
विश्व ध्वंस से शोध करेंगे नव जग निर्मित—
श्री समरसमय मनुष्यत्व को नम्र नमन है !

कुछ स्वर— फिर से मानव शिशु खेलेंगे भू शमधाम में
पुनः बहेगी जग के मरु में जीवन धारा
मस्त भर रहे प्रबल शक्ति जन के प्राणों में
विस्तृत करता चरण तरुण वक्षस्थल उनका
भस्मसात् कर रही अग्नि जीवन का कर्दम
मुक्त हो रहा शेषासन फिर महाव्योम से
शेष ऊर्ध्व फन खोल उठाता भू को ऊपर
फहराते दिङ्नाग मनुज की विजय ध्वजा को !

तृतीय दृश्य

[काल-प्रारम्भ सूचक वाद्य संगीत । कुछ समय के बाद का दृश्य । अग्नि का प्र
शांत हो गया है। कुछ बलिष्ठ हाथ फावड़े कुदाल आदि लेकर ध्वंस के ढे
खोदते हुए बीच में गा रहे हैं।]

गीत

खोद खोद रे न हार!
शांत हुई अग्नि वृष्टि
ध्वंस देव मग्न सृष्टि
खोज रही नग्न दृष्टि
आर पार, आर पार!

रत्न गर्भ धरा धूम
मिट्टी में छिपे मूल
वही बीज वही फल
त्याग बीज कर विचार।

एक स्वर— बीत गए बस वर्ष आज उस अग्नि प्रलय को
ठंडी जीवन राख पड़ी बुझ गए अंगारे,
फट छँट गए धुँए के बादल नए क्षितिज की
धुँधली रेखाएँ सुदूर दिखतीं विपन्न सी!
रिक्त ताम्र का व्योम तप रहा धूम संध्या में
झुलस रहे तन को झंझा के तप्त भभूके
व्याप्त पड़ा भू भाग सभ्यता का गत खँडहर
तृण तरु जंतु रहित मिट्टी के करुण दैन्य सा।
घोर निराशा का विषाद तम के कपाट सा
प्राणों को जकड़े है क्रूर प्रलय प्रहरी बन
महाश्मशान बना धरती का जीवन प्रांगण
जहाँ भयावहता विभीत निज भैरवता से,

मृत्यु-शून्य काँपता निदारुण सूनेपन से
निर्जनता प्रतिफलित निविड़ निर्जनताओं में!

दूसरा स्वर— इधर इधर है टूट खाट का ढेर हटाओ
पूरे बल से खोदो हाँ कूड़े कचरे को
बाहर फेंको यह न मुड़ कर तो देखो
नहीं कहीं पाषाण खंड से टकरा खटखट
उगल रहा चिनगारी क्रोध भरा कुदाल है!
कैसी है यह वज्र शिला जो प्रलय अग्नि से
जल गल कर भी राख नहीं हो सकी अलमुँही!
निश्चय यह पाषाण हृदय प्रतिमा है कोई!
एक साथ वीरो शाबाश! इसे सब मिलकर
नरक योनि से बाहर लाकर सीधा रख दो!
झाड़ पोंछ कर इसकी एक झलक तो देखें—
छि: छि: छि:, कैसा कुत्सित विकराल रूप है!
यह, यह क्या यमराज स्वयं? या कोई दानव
काल ध्वंस से दब कर पथरा गया धरा में?

तीसरा स्वर— अरे नहीं! यह वज्रप्राण इतिहास मूर्ति है
रक्त पंक है इसके अवयव दारुण आकृति
दुःस्वप्नों से भर पलक दुःस्मृति पीड़ित उर,—
यह नृशंस आदिम बर्बरता का प्रतिनिधि है
मानवता का निर्मम शिक्षक चिर अन्यायी!
इसे दबा दो पुनः गाड़ दो — इसे अँधेरे
अतल गर्त में दफना दो! मत भू जीवन की
इस भीषण छाया को गहरे नरक कुंड में
दो धकेल इस भूमि का फिर पाताल भेज दो!

(मूर्ति को लुढ़काने का शब्द)

प्रस्तर युग से पूँजीवादी युग तक का यह
शोणित रंजित सर्प मनुज की निर्ममता का
नई पीढ़ियाँ इसकी आकृति देख भयानक
[illegible] न हो जाएँ जीवन से!

एक वृत्त हो चुका समापन भू जीवन का
बदल गया मत दृष्टिकोण जग जीवन के प्रति
बदल रहा मानव मन बदल गया भू प्रांगन
नया पृष्ठ खुल रहा चेतना का स्वर्णोज्वल
गत दुःस्मृति को निश्चेतन में मज्जित कर दो।
नया वृत्त उठ रहा मात्र इतिहास नहीं जो
नई चेतना का प्रकाश भू स्वर्ग विधायक।

गीत

खोद खोद कर प्रहार।
दबी कहीं मिले आग
चिनगी फिर उठे जाग
आशा को तू न त्याग
शोलें को ले निखार।
भू के उर में विलीन
युग अनेक पुरातीन
ध्वंस मह नहीं नवीन
सृजन प्रलय दुनिवार।

एक स्वर— रक्त मांस के सड़े पंक से उमड़ रही है
महा घोर दुर्गंध रुद्ध हो उठती श्वासा
तैर रहे गल अस्थि खंड धड़ खंडमुंड हत
कुत्सित कृमि संकुल कर्दम में महानाश के।
विश्वव्यापी संहार असंख्य निरीह जनों का
मृत सभ्यता का दारुण उपहार है घृणित।।
अगणित मनुजों की देहों की मांसल रज से
धरती की मिट्टी का नव निर्माण हो रहा
कितने मम प्राणों हृदयों का भावुक स्पंदन
कितने उर्वर मस्तिष्कों का चेतन वैभव
मरा धूलि में खोकर एकाकार हो गया।
क्या वह आज उगेगा स्वप्न प्ररोहों में नव?

दूसरा स्वर— यू यह कौन कराह रहा इस नरक कुंड में
औंधे मुँह गिर कर आहत मन क्षत विक्षत तन !
कोई अबला है यह क्या ? नागिन सी वेणी
लोट रही है पृष्ठ देश पर बल खाई सी !
इसे खींच बाहर कर दूँ इस पाप कुंड से !
महिमामयी किसी नारी की रम्य मूर्ति यह !
रस भरे द्रुम रंजित अधर, उरोज मधुकुंभ से
अंगों से लावण्य टपकता भी ही कोमल
कुंचित भ्रू लतिका इंगित पर नचा जगत को
क्लांत भंगिमा में क्षण भर विश्राम ले रही !
मन मोहिनी रही होगी यह सुगढ़ यौवना
हाय रुक गया सहसा क्यों इसका उर स्पंदन !

तीसरा स्वर—देखूँ ? ओ यह वर्ग सभ्यता की अनुकृति है,
शोभा सज्जा रूप मधुरिमा की प्रतिमा सी !
फूलों के मृदु अंग हृदय पाषाण शिला सा
इसके स्वर में जादू अधरों में थी ज्वाला
अधिकारों की मदिरा से आरक्त युग नयन
धन बल से स्वर्णिम मंडित चंचल प्रिय अवयव
भ्रू विलास से महा समर छिड़ते थे जग में —
निखिल धरा के कटु शोषण पीड़न से पोषित
निखरी थी इसके अंगों की मांसल शोभा !
स्वाभाविक ही अंत हुआ इसका युग भू पर
पके विषमता के फल सी गिर पड़ी स्वयं यह !
ऐंठ रहा है तन मर कर भी लोक घृणा से !!

गीत

घोर, घोर रे ज्वार !
विश्व ध्वंस का घमसान

शेष अब न शीश स्वान
विजन भीत क्षुब्ध प्राण
भरते कातर पुकार !
काल रात्रि का प्रसार
छाया घन अंधकार,
निगल रहा निराकार
रुद्ध स्वर्ग ज्योति द्वार !

एक स्वर— फँस रहा कटु अनाचार मह भरा नरक में
चूर्ण हो गया विगत संगठन मानव मन का
नैतिकता चीत्कार भर रही सदाचार अब
दृष्टि हीन घन अंधकार में राह टोहता !
बर्बर युग की ओर जा रहा फिर मानव पशु,
धर्म नीति आदर्श निर्वासित म्रियमाण हैं पड़े
लूट पीट, हिंसा नृशंसता अट्टहास भर
कर तांडव कर, रौंद रहे मानव आत्मा को !
मर्माहत हो उठी मनुज की मूक चेतना
लोक विघातक विश्व युद्ध की निर्ममता से —
गहरे व्रण पड़ गए धरित्री के जीवन में
अमित क्रूर, कटु अब नियति निकली मानव की ! !
प्रगत गर्त में पड़ी सिसकती विश्व सभ्यता
उमड़ रही अब हिंस्र वृत्तियाँ अवचेतन की
मनुष्यत्व का रक्त चूस कर, कृमि सा मानव
दानव बन कर रेंग रहा विगृ भ्रष्ट रीढ़ पर !
अन्न-वस्त्र गृह आवागमनों के अभाव से
पुण्य प्रहेरी जीवन बिता रहे नारी नर,
व्याधि व्याधि बहु रोग टूटते क्षुधित गीध-से
काम क्रोध मद लोभ झूमते नग्न नृत्य कर !
राग द्वेष स्पर्धा कुत्सा कटु कलह परस्पर
नोंच रहे मानव का मुख पैने पंजों से ! !

दूसरा स्वर— देखो है यह कैसी प्रतिमा यहाँ पड़ी है ?
मूर्छित सी लगती विष वाष्पों के प्रभाव से !
इसे गर्त से बाहर ला उपचार तो करो
हिला डुला कर सम्भव यह प्रकृतिस्थ हो उठे !
हृष्ट पुष्ट है इसके पुट्ठे मांस मांसल
जटिल शिरा तंत्रों में दौड़ रही यह विद्युत्
टिक टिक करता हृदय पिंड मधु काम यंत्र सा
मंद पड़ रहा धीरे जिसका यांत्रिक स्पंदन !
यह नवीनतम प्रतिकृति है कोई नव युग की
किसी सर्व सम्पन्न व्यक्ति की कीर्ति बिखरी !
आओ इसको खुली हवा में रख दें सब नर
इसके मुरझाए मुख पर जल के छींटे दें !

तीसरा स्वर— ना यह तो भौतिक युग की विज्ञान मूर्ति है !
दूर, दूर हट जाओ इसकी वज्र देह का
अणु विस्फूर्जित विद्युत् किरणें गला रही है !
स्वयं मनुजों से निकल रहीं विष की निःश्वासें
वाम हस्त में रख कृमियों से भरा पात्र है !
दक्षिण कर का संजीवन घट फूट गया है !
भस्मासुर सा अणु बम का वरदान प्राप्त कर
यह अपने ही वरद हस्त से भस्म हो गया !

एक स्वर— नहीं नहीं यह अधिक समय तक भस्मावृत हो
नहीं रहेगा ! यह अपने ही भस्म ढेर से
नव्य जन्म ले पुनः जी उठेगा पृथ्वी पर !
इसके भीतर मूल सत्य का अमर अंश है
इसको अपने ही विनाश से पाठ सीख कर
विध्वंसक से निर्मायक बन कर जगने दो !

गीत

घोर घोर रे मँझधार !
जीवन तम हो अछोर,

मन से हो दूर भार,
होगी फिर कृपा कोर
बीती को दे बिसार !
अतल उदधि में अकूल
बिना एक नित्य कूल
बिना नाल बिना मूल
अंब अतुल मुक्त भार !

एक स्वर— इस मिट्टी की अंध योनि में जाने कैसे
जब जीवन का बीज गिर पड़ा अकस्मात से
जो प्राणों की हरियाली में रोमांचित हो
जग जन में छा गया असंख्य प्ररोहों में हँस !
सुनता हूँ जो गहराई में पैठ खोजते
पाते वे नित गूढ़ रत्न पर यह मानव मन
अतल अकूल गुहा है जिसके रहस मर्म को
थाह नहीं पाई मानव सभ्यता अभी तक !

दूसरा स्वर— यहाँ कौन लेटा है यह कर्दम में लिपटा
जीवन श्रांत पथिक सा जगती से विरक्त मन ?
काल स्थविर कोई ऋषि चिर निद्रा में सोया
देख रहा है स्यात् स्वप्न बैकुंठ लोक के !
उन्नत निष्प्रभ सा ललाट श्रुति तीर्थ-से नयन
भरा झुर्रियों से आनन चंदन चर्चित तन
स्फटिक माल स्मित वक्ष अंग बाँधे बाँहों में
वृद्ध पुजारी सा लगता सूने मंदिर का
दीपशिखा बुझ गई आरती करते जिसकी !

तीसरा स्वर— भाई, यह तो दारु मूर्ति है जीर्ण धर्म की
जिसके सम्मुख प्रणत रहे युग युग से जनगण
तर्क जाल फैला जिसने आकाश बेलि-से
पाप पुण्य में स्वर्ग नरक में उलझाया मन !
रक्तपात बहु हुए धरा पर इसके कारण

जीवन से हो विमुख बने बन निर्जन सेवी
घोर अंध विश्वासों के कुहरे में लिपटा
रूढ़ि रीतियों में जकड़ा इसने जीवन को।
राजनीति ने सिंहासन च्युत कर फिर इसको
भौतिक बल से वशीभूत कर, किया पराजित
गत युग की बौद्धिकता ने जीवन दर्शन मे
चीर फाड़ कर, इसके शव का किया परीक्षण।
गगन गगन बज रही घंटियाँ अंतरिक्ष में
भगन भगन हो रहा समापन एक महायुग।
स्वर्ग लोक है मिले पतित इस पुण्य मूर्ति को
जगमग सेवक महाप्राण युग बृद्ध धर्म को।
रजत स्वगन मानव के अंत स्मित शिखरों पर
नव आध्यात्मिकता बिखरे नव जीवन चेतन
घन घन घन बज रजत घंटियाँ अंतर्मन में
नव्य चेतना का आवाहन धरती भू पर।

गीत

खोल खोल, ज्ञान द्वार!
भूले भूले मनुज मान
खंड खंड बहिर्ज्ञान
योग भ्रष्ट आत्मध्यान
बहिरंतर कर सुधार!
बाहर ही तू न दौड़
भीतर ही दृग न मोड़,
दोनों के सूत्र जोड़
दोनों को ले उबार!

एक स्वर— कितने ही दर्शन विज्ञान गढ़ मनुष्य ने
रीति नीतियों की बाँधी धन मर्यादाएँ,
मगर तंत्र से राजतंत्र औं' प्रजातंत्र बहु
परिचालित नित करते रहे मनुज समाज को।

पर मिट्टी की अंध अहंता को मानव मन
दीपित हाय न कर पाया अंतःप्रकाश से
उसकी जड़ निर्ममता को कर प्रीति विद्रवित
सँजो नहीं पाया विस्तृत जीवन शोभा में!
जाति वर्ग के वर्ण योनि के अहंकार को
खंड युगों की संस्कृतियों के संस्कारों को
राष्ट्रों की स्पर्धाओं भिन्न मतों वादों को
मनुष्यत्व में ढाल न वह पाया भू व्यापक!
संस्कृति का मुखड़ा पहने वह सभ्य वेश में
प्रगत रीढ़ पशु मात्र रहा गत युग का मानव!!

दूसरा स्वर— यह सिर के बल खड़ी मूर्ति है किस नर पशु की?
मानव के पूर्वज सा लगता मात्र मूढ़ जो!
पुच्छ विषाण विहीन भरा बहु रोमों से तन
पृष्ठ कच्छपी के से पृथु चौड़ी मुख आकृति
मत्त वृषभ का सा मांसल निकला तन इसका
कौन पड़ा यह पंक में कीचड़ में डूबा!

तीसरा स्वर—किसी मनोविश्लेषक की प्रतिमा लगती यह —
सीढ़ी सीढ़ी उतर गहन वासना गर्त मे
अवचेतन के अंधकार में भटक गया जो!
ऊर्ध्व श्रेणियाँ छोड़ चेतना की जो निम्नग
निश्चेतन मे बिखरा पशु मानस के स्तर पर,
उलझ ग्रंथियों में असंख्य इंद्रिय भ्रम पीड़ित
खोज न पाया आत्मशुद्धि का पथ अंतर्मुख —
उभरे मोटे ओठो मे लालसा दबाए
कुंठाओ की रेखाओं से जर्जर आनन!

एक स्वर— और अनेकों खंडित चिह्न यहाँ गत युग के
पड़े धूल में —अंकित जिनमें धुँधली स्मृतियाँ
प्राणि वनस्पति जग के जीवन वैचित्र्यों की!
यह डार्विन है क्या? जिसने जीवन विकास की

विस्मृत कड़ियाँ पुष्टि की निज जीवशास्त्र में
वर्गचयन परिवेश परिस्थिति को महत्व दे
जल थल नभचर के विकास का क्रम सुलझा कर
सिद्ध किया मानव को वंशज शाखा मृग का —
निष्क्रिय परवश मात्र मान जीवनी शक्ति को !

दूसरा स्वर— यह संभवतः कार्लमार्क्स ! सामाजिक जीवन का
विश्लेषण संश्लेषण कर जिसने विश्वव्यापक
नव द्वन्द्वात्मक भूतवाद का युग दर्शन दे
आंदोलित कर दिया लोक जीवन समुद्र को —
अर्थशास्त्र का नव संजीवन पिला जना को ।
वर्ग क्रांति का दूत साम्य जन तंत्र विधायक ।

तीसरा स्वर—देखो है यह बुद्धों सी म्रियमाण पड़ी हैं
युगल मूर्तियाँ मूक पुष्ट हो यहाँ विलीनी
बर्बर गर्हित आकृति इसकी बौना सा कद,
वक्र भृकुटि, दर्पोन्नत शिर, पद मद स्फारित दृग
रक्त सिक्त पृथु हस्त कोप से फूले नथुने
मानो मर्दे पैर रौंदते हों ज्यों भू को !।

दूसरा स्वर— राजनीति औ' अर्थनीति की प्रतिमाएँ ये
सैम सैम जो नित रहीं स्वार्थ की समवाहीं हैं
दुरभिसंधि करतीं कुचक्र रचतीं जन भू पर,
आंदोलन संग्राम छेड़ती रहीं निरंतर
जन संगठनों के मिस नव अधिकार माँगतीं ।
आकृति में छिपती ममता में महाकाय ये
महाध्वंस ला भू पर अणुबल संग्रह कर !
चूर्ण चूर्ण कर दो इनका स्मृति शेष रूप है,
मिट्टी में मिलने दो मिट्टी के दैत्यों को,
बहिर्जगत के अंध तमस में रहें भटकते
यमज प्रेत ये निर्मम जग जीवन के बाधक ।

गीत

जाग जाग उर उदार!
तमस में छिपा प्रकाश
प्रलय में सृजन विकास
मृत्यु अमर का विलास
जगत रे नहीं असार!
पतझर में नव बसंत
सीमा में चिर अनंत
खुल रहा नवल दिगंत
युग प्रभात मुख निहार!

एक स्वर— तिमिर तोम छँट रहा कट रहे भूमिज पर्वत
स्वर्ण बिम्ब नव उदित हो रहा मनोगगन में
नवल चेतना किरणों से दीपित आशाएँ,
उतर रही हैं दिव्य ज्योति अंतः शिखरों पर!
ध्वस्त विगत मानस का खँडहर पड़ा धरा पर,
भूमिसात् मत भव भित्तियों के दुर्गम गढ़
ढहा भाप बन भू शोषक मौतिक आडंबर,
निखर रही नव मूल्यों से संपन्न धरित्री!
ऊर्ध्व पंख उड़ती अभिनव प्राणों की शोभा—
स्वर्ण हंस सी उतर रही निःस्वर वन भू पर
ज्योतिर्मयी नवल आध्यात्मिकता नव चेतन!

दूसरा स्वर— यह किसकी प्रतिमा है स्वर्गिक आभा मंडित?
जीवन सुषमा से निर्मित जिसके प्रिय अवयव
विश्वप्रीति से स्पंदित विस्तृत कोमल अंतर,
करुणा विगलित दृष्टि ज्ञान से दीपित मस्तक
दक्षिण कर में अभय वाम में संजीवन से
कौन उतर आई भू तम में यह सुरबाला?
धरती की रज को शोभित करता इसका तन
उमड़ रहा चेतना सिंधु नव निस्तल तट में!

तीसरा स्वर—इसे देखते ही पहचान गया मेरा मन!
यह संस्कृति की प्रतिमा है नव भामा देही
अपने ही उर के प्रकाश से रहस नियम से
जिसका रूपांतर होता रहता युग युग में!
बाह्य शक्तियाँ जब अपने ही युग विप्लव में
ध्वंस भ्रंश हो जातीं कटु संघर्ष में निरत
अन्तर के शाश्वत प्रकाश से यह नव जीवन
नव मन निर्मित करती रहती नव चेतन हो!
समाधिस्थ सी यहाँ पड़ी यह आत्मलीन हो —
इसे देख कर नव जीवित हो उठी हृदय में
नव जीवन नव ज्योति प्रीति की सुख की आशा!
जय हो भव मानवता की जय भव संस्कृति की —
जिसके पावन अमृत स्पर्श से ध्वंस शेष से
धरा स्वर्ग नव निखर रहा जन मनःक्षितिज में!

(आशा-आनंद-उत्साह द्योतक वाद्य संगीत)

चतुर्थ दृश्य

[सिन्धु तट पर एक स्वच्छ सुन्दर आश्रम। प्रभात का समय। एक नवयुव द्रष्टा प्रौढ़तापस नवोदित सूर्य के स्वर्ण बिम्ब को आह्लादपूर्वक अर्धविकसे रक्त-श्वेत कमलों की अंजलि अर्पित कर रहा है। आकाश से चतुर्दिक प्रकाश की रंगीन पंखड़ियाँ बरस रही हैं। नेपथ्य से प्रभात वंदना के स्वस्थ मधुर स्वर प्रवाहित हो रहे हैं।]

स्तवन

स्वर्णोदय जय हे जय हे!
ज्योति तमस भिन्न धाम
जन्य रहस श्री ललाम
जीवन मन पूर्ण काम
जगत् हृदय मय हे!

कनक कमल भरा शिखर
प्राण उदधि उठा निखर,
संशय भय गए बिखर
सुर नर विस्मय हे!

मिले स्व स्वर्ग धरा
बुद्धि बनी ऋतंभरा
सिद्धि खड़ी स्वयंवरा
अब चित् परिचय हे!

देव दनुज भेद-मुक्त
मनुज राग द्वेष मुक्त
क्षेम प्रेम सहज युक्त
चिर मंगलमय हे!

अन्तर्नभ के प्रकाश
शाश्वत सुख के सुहास
मति मानस के विलास
नित नव अतिशय हे!

द्रष्टा— नव ऊषा का ज्योति द्वार अब अन्तर्नभ में
धीरे धीरे खुल दीपित करता विश्व को
मनःसिन्धु की लहरों में शत स्वर्ण रश्मियाँ
खेल रहीं आलोक चूड़ भावों से मुखरित!
उतर रही नव जीवन प्रतिमा आभा देही
शोभा पंखों में उड़ नव स्वप्नों में मूर्तित
स्वर्ग शुभ्र कलहंस कपोत विचरते नभ में
बरस रहा सौन्दर्य अलौकिक धरा शिखर पर!
कुसुमित अब भू का प्रांगण जन गृह कुंजों में
स्वप्न झरोखे खुले दीप्त शत अन्तर्नभ को
विचर रहे हैं शांत अभय नर अन्तर्मोचन
प्रीति ध्वनित कर भू का उर निज पद चापों से!

लुप्त हो गई अब दुःस्वप्नों की छाया स्मृति
हृदय ग्रंथि खुल गईं, खुल गए भू के बन्धन
अन्ध अस्मिता अवश चेतना की धारा से
स्वप्न मुखर हो उठे मग्न मन जीवन के तट!
परिवर्तित जीवन के प्रति जन भाव क्रोध भय
राग द्वेष हट गए, मिट गई हिंसा स्पर्धा,
शान्तातप हो गए जगत के सब संग्रामित!
इन्द्रिय पीड़ित बहिर्मुख विभ्रम कुंठित मन
आरोहण करता अन्तर्मुख सोपानों पर
दिव्य मातृ चेतना बन गई, प्रकृति चेतना
व्यक्ति विश्व के मृदु भेदों में स्वर संगति भर!
धीरे धीरे उपचेतन निश्चेतन का तम
आलोकित हो रहा ऊर्ध्व स्पर्शों से प्रेरित

गत युग के सामाजिक विरोध वैषम्य निखिल युग
नवल संतुलन ग्रहण कर रहे अन्तःपूरित !
स्वतः दिव्य चेतना आज संचालित करती
मानव के जीवन के मन के व्यापारों को !
तर्कवाद मिट गए न अब बौद्धिकता का तम
इच्छाओं का संघर्षण प्राणों का विप्लव !
शिथिल वसन सी खिसक देह से जीवन तृष्णा
मानव के चरणों पर पड़ी प्रणत छाया सी !

क्या विरक्त हो गया मनुज मन जीवन के प्रति ?
नहीं क्षुद्रता सकल मिट गई मानव मन की
जिससे कुंठित स्वार्थ विभक्त रहा जग जीवन !
अहं भाव का स्थान ले लिया आत्म ऐक्य ने
अहंता ईहा सहज समन्वित आज हो गई
अन्तरतम से योग युक्त हो चेतन मानव
मुक्त मधुर वैचित्र्य भोगता विश्व प्रकृति का !
आत्म स्थित वह जीवन की आकांक्षाओं का
दास न अब स्वामी है वह द्रष्टा भोक्ता है !
जीवन की कल्पना निखिल अन्तः परिणत हो
भी सीमा आनंदमयी बन गई धरा पर
भाव दिशाएँ मुखरित अन्तर झंकारों से
सस्मित धरणी का मुख अमर कला कौशल से
बाह्य योजनाओं से अब न हृदय आतंकित
अंतः शोभन नर अन्तर्जीवन निर्माता !
शांति बरसती अंतस का सौन्दर्य बरसता
ज्योति प्रीति स्मित भरा मनाती जीवन उत्सव !

(आनन्द-मंगलसूचक वाद्य संगीत को बिगुलों के स्वरों तथा घोड़ों टापों में डूब जाता है।)

कौन आ रहे ये अश्वारोही सैनिक-से
शस्त्रों से सज्जित प्रयाण का वाद्य बजाते

आत्म पराजित विश्व विजय के आकांक्षी जन —
अभी शेष हैं भू पर क्या पशुता बर्बरता ?

(कुछ सैनिकों का प्रवेश)

प्रतिनिधि— अभिवादन शत अभिवादन करते नत मस्तक
हम पृथ्वी के लोकतन्त्र सत्ता के प्रतिनिधि
विश्व भ्रमण को निकला है यह संस्कृति मण्डल
सद्भावों से प्रेरित मैत्री स्थापित करने ।

द्रष्टा— सैनिक भूषा में ?

प्रतिनिधि—
धरती के रक्षक हैं हम ।
महानाश में अक्षत रहा प्रदेश हमारा ।
हाहाकार मचा था जब सारी धरती में
नव जीवन निर्माण निरत था लोकतन्त्र तब ।
अर्धशती है बीत गई उस विश्व ध्वंस को
लोकतन्त्रता विद्युत् गति से आगे बढ़कर
विकसित अब हो उठी चरम सीमा में अपनी
अग्नि अस्त्र से फिर कृतार्थ भू जीती जगमग
आज हमारे अस्त्र स्थित उस महादेश में
शिक्षा से संपन्न कला कौशल में दीक्षित
सामूहिक जीवन शिल्पी जन के प्रतिनिधि वे ।
हमने विद्युत् वाष्प रश्मि अणु को वश में कर
उन्हें लोक जीवन रचना में किया नियोजित
सिन्धु पवन से जीव तरंगित तड़ित् शक्ति को
शत आविष्कारों से उर्वर किया धरा को ।
नए फूल फल नई वनस्पतियाँ उपजा कर,
नए जन्तु, नव अश्वशक्ति के प्रहरी रच कर
हमने बहु यांत्रिक मन यांत्रिक जन निर्मित कर
विश्व प्रकृति को किया विजित मानव क्षमता से ।
बरसाते अब कृत्रिम घन शतमुख जल सीकर,
मरुथल जीवन उर्वर अब, पर्वत नत मस्तक,

दीप्त शिखा का तमस रसायन के जादू से
स्वर्ग बन गई भू, भौतिक विज्ञान स्पर्श से !
महत् सभ्यता का निर्माण किया है हमने
शोषण पीड़न से रहित कर जनगण का श्रम !

द्रष्टा— फिर कृतार्थ हो उठा निभृत सागर प्रांतर यह
आज आपके शुभागमन से प्राण प्रफुल्लित
लोकतन्त्र के नागरिकों के प्रतिनिधियों का
हम हार्दिक स्वागत करते हैं उनके अतुलित
जीवन कौशल से विस्मित हो !

प्रतिनिधि— क्या यह कोई
नया तन्त्र है ?

द्रष्टा— यह जीवन संस्थान मात्र है !
यहाँ मनोयंत्रों को विकसित कर साधकगण
नव प्रयोग कर रहे मनुज मन के विकास पर !
यों अन्तर्विज्ञान निहित नियमों पर आश्रित
सत्यों का अनुशीलन कर मानव जीवन का
रूपान्तर कर रहे अभीप्सा में रत अविरत !
अन्तर्मन की सुप्त शक्तियों को जाग्रत् कर
दिव्य अवतरण को सचेष्ट करने के प्रार्थी
आत्म समर्पण से श्रद्धा विश्वास प्रीति से
आवाहन कर रहे महत् जीवन का भू पर !
मानव के अन्त शिखरों पर भव्य चेतना
उतर सके जिससे ज्योतित स्वर्णिम प्रवाह सी !
हास्यास्पद लग रहे भले हों आज आपके
समदिक आदर्शों में निरत बहिर्गत मन को
ऊर्ध्वग जीवन आकांक्षा के स्वप्न हमारे
किन्तु साधकों का गभीर अनुभव है निश्चित
भगवत् जीवन ही भू जीवन का भविष्य है !

प्रतिनिधि— आप वृथा सन्देह मत करें अपने मन में
महत प्रभावित हुए आपकी वाणी से हम—

सत्य जानिए, लोकतंत्र के महत्वाकांक्षी
जन का मन अब भावर्शों के प्रति भास्वत् है !
जीवन की इच्छाओं से परितृप्त प्राण वे
भौतिक सामाजिक साधारणता से अवगत
बोझिल सामूहिकता से हो मर्म भ्रांत अब
अंतर्शिखरों पर आरोहण को उद्यत हैं !
दिव्य ज्ञान की दीक्षा के उपयुक्त पात्र वे
आप उन्हें कृतकृत्य करें अभिनव प्रकाश दे
आत्मा का स्वर्णिम पावक वितरण कर जन में
गहन अनुभवों से पोषित कर उनके मन को !
गत युग के आदर्श वस्तु विषयक विभेद अब
हुए समापन—जड़ चेतन का कटु संघर्षण
धर्म काम के बीच पट गई दुर्गम खाई
धरा स्वर्ग को मिला दिया नव ज्योति सेतु ने !
बाह्य विरोध मिटे सब नू जीवन की अपूर्णता
अपनी ही भंगुर सीमाओं से लज्जित है !
महत् प्रेरणा विश्व जागरण के हित उत्सुक
बहिर्गमन से भ्रांत खोजते जन अंतःपथ !
सभ्याओं के कोलाहल से कंपित अंतर,
यांत्रिकता के लौह पदों से जर्जर जीवन
समतल समता प्रचलित परिचित सभ्यता से
चिर विरक्त हो नव स्वप्नों का आकांक्षी अब !
धरा मरण को भुला अचिर ऐहिकता के हित
बहला सकता मनुज न मन को दीर्घकाल तक !
फिर इंद्रिय वैचित्र्य हृदय को मोह विरत कर
प्रेरित करता उसे सत्य की खोज के लिए !
लोकतंत्र का यह अनुभव अब सामूहिकता
निगल नहीं सकती अंतःस्थित मनुज सत्य को !--

(शांति पावनता, आनंदद्योतक वाद्य संगीत)

ऐसी पावन शांति सहज जो व्याप्त है यहाँ
हमें नहीं अन्यत्र धरा में मिली कहीं भी !
यह कैसा नीहार कांति का रजत लोक है ?
विचरण करता हृदय यहाँ किन सोपानों से
अंत सुरभित स्वप्नों के नव मुकुलित वन में !
कैसी स्वच्छ सरस जीवन चेतना यहाँ है
एक अलौकिक आकर्षण है व्याप्त चतुर्दिक !
सिहर रहीं किस गोपन सुख से मनःशिराएँ,
खुल पड़ते अंत शोभा के पट पर नव पट
अपलक नयनों के सम्मुख —मन को विमुग्ध कर !
जाग रहीं शत सूक्ष्म प्रेरणाएँ मानस में
शिखरों पर नव शिखर उठ रहे स्वर्ग विभव के
प्राण सिन्धु को नव स्पर्शों से आंदोलित कर !
कौन देव ये स्वस्थ सौम्य स्मित मुखमंडल से
शांति कांति चिर बरस रही किस अंत-सुख की ?
दुर्लभ है यह ज्योति प्रीति आनंद मधुरिमा
दुर्लभ भू पर अमर चेतना का यह उत्सव !
युग युग से मानव अंतर इस अमृत स्पर्श की
मर्म मधुर अनुभूति के लिए उत्कंठित था !
लोकतंत्र का जीवन वैभव इस जीवन की
छाया की छाया है, क्षर भू रज में लुंठित !
आप हमें चरितार्थ करें नव ज्ञान दृष्टि दे
रिक्त धरा को पूर्ण करें निज अमर दान से !

प्रधान— आज परम आनन्द मिला जन प्रतिनिधियों के
उच्चाकांक्षा से प्रेरित वचनों को सुनकर !
यह ईश्वर की महत् कृपा है समतल जीवन
आज ऊर्ध्वमुख आरोहण के हित उद्यत है !
आज धरा के अंधकार का गर्त भर गया
नव जीवन की आकांक्षा के नव प्रकाश से
भू जीवन के क्लेश मिट गए, भेद मर गए,

नाटक

रूपांतर हो रहा प्रकृति का परम दया से।
आप सहज आतिथ्य करें स्वीकार हमारा
तापसगण को जनसेवा के हित अवसर है।
अमपद् करुणा जनगण पर चरितार्थ हो रही
रूपांतर का समय निकट अब भू जीवन का।

देख रहा मानव भविष्य में सूक्ष्म दृष्टि से
विगत राजनीतिक आर्थिक तन्त्रों पर विजयी
भू पर मानव तंत्र हो रहा प्राण प्रतिष्ठित
मनुष्यत्व के ऊर्ध्वंग मूल्यों पर आधारित।
बौद्धिक वादों स्थूल मतों से मुक्त भरा जन
स्वत: खिल रहे पुष्पों-से अंत: प्रतीति स्मित
उर के सौरभ में मज्जित कर स्वर्ग लोक को।
आओ वंदन करें आज उस परम शक्ति का
क्रीडानक यह विश्व महत् जिसकी इच्छा का।

गीत

ज्योति वाहिनी
अमृत वाहिनी
जगत पावनी।

उतरो भू पर निकाम
जग मन हो प्रीति धाम
जीवन शोभा ललाम
स्वप्न धामिनी।

मुक्त रक्त उर प्रसार
चेतन में नये ज्वार,
प्राणों में नव निखार
कलुष दाहिनी।

कुसुमित भू बाह्य द्वार
अंतर्मुख मन विचार
भौतिक थी सुख अपार
स्वर्ग भामिनी !
प्रभु पर श्रद्धा प्रतीति
संस्कृत हों रीति नीति
विजित जरा रोग भीति
मृत्यु यामिनी !

अप्सरा

(सौन्दर्य चेतना का रूपक)

अप्सरा

[illegible]साकार

ध्वनियाँ

प्रतिध्वनियाँ

प्रथम दृश्य

(भावोद्वेलन)

[मन क्षितिज की छाया चेतना में हृदय सरोवर के तट पर कलाकार ध्यान
न बैठा है। सामने भावनाओं की स्वर्ण शुभ्र वीचियाँ, विचारों के रजत कुहासे
ो चीरकर निखर रही हैं। आकाश से प्रेरणाओं की लहरियों द्वारा मंद मधुर
स्वप्नवाहक संगीत मुखरित हो रहा है।]

अप्सरा का गीत

छम छम चल   नभ पायल
बजती मेरी प्रतिपल
मित नीरव   नभ में रव
झरता मेरा प्रतिक्षण !

मर्मर भर   अस्फुट स्वर
गाते वन के तरुदल
लहरों पर   मृदु पग धर
फिरती मैं रह ओझल !

ऊर्ध्वग पथ   सौरभ रथ
उड़ता मेरा अंचल
घूँघट कर   शशि मुख पर
हँसती मैं स्वर्णोज्ज्वल !

जीवन के   आँगन में
ऊषा की स्मिति निश्छल
छायातप   में काँप काँप
संध्या में पाती हल !

(संगीत-लहरियाँ धीरे-धीरे विलीन होती हैं)

कलाकार— यह कैसी संगीत वृष्टि हो रही गगन से
या मेरा ही श्याम मौन मन गा उठता है ?
कैसा आकर्षण है यह, कैसा सम्मोहन
यह सौन्दर्य मधुरिमा कोई मेरे मन को
जैसे बरबस खींच रहा हो ! क्या है यह सब ?
प्राणों की व्याकुलता जीवन की व्याकुलता !
यह सब तो मैं यौवन का रोमांच द्वार भी
पार कर चुका जब मंजरित दिगंत धरा का
पागल कर देता था मन को !

यह मादकता
यह सुन्दरता यह सम्मोहन अकथनीय है,
अकथनीय ! आश्चर्यचकित हूँ ! बाहर भीतर
ऊपर नीचे—नील व्योम पर, गिरि शिखरों पर,
हरित धरा पर,—वही मधुर सम्मोहन मुझको
बुला रहा है ! सबने मुझको घेर लिया है !
बंदी हूँ मैं बंदी ! सम्मुख रजत सरोवर
पर्वत की बाँहों में जैसे बँधा हुआ है !
इन पाषाणों के भी क्या प्रेमार्द्र हृदय है ?
ऐसा ही आकुल चंचल हो मेरा मन भी
जीवन के पुलिनों से टकराता रहता है !
जैसे कोई शोभा छाया मेरे मन से
लिपट गई हो और उसी के संकेतों पर
मेरा जीवन नाच रहा हो ! विस्मित हूँ मैं !
नहीं जानता स्वर्ग लोक की कौन अप्सरा
मेरे भीतर समा गई है, जिसने मन को
निज स्वप्नों के फूल पाश में बाँध लिया है !
यह समस्त सौन्दर्य मुझे लगता है जैसे
उसका एक कटाक्ष पात है ! मुख पर झिलमिल
किरणों का घूँघट दे स्वर्णिम छाया पट से
आँखमिचौनी खेला करती है वह मुझसे !

उसके रूपों के सौ सौ भावर्तों में पड़
बहते हुए कमल सा मेरा मन जाने कब
एक लहर के बाहुपाश से छूट दूसरी
लहरी के चंचल अंचल में बँध जाता है !
घोर अराजकता है प्राणों के प्रदेश में !
वतकथा के राजकुँवर सा मोहित हो मैं
भटक गया हूँ किसी गुप्त अप्सरा लोक में !

अप्सरा का गीत

जब निभृत नीलिमा कुंजों में
ऊषाएँ जग कर मुसकातीं
मैं अर्ध खुले वातायन से
अपना स्वर्णिक मुख दिखलाती !

जब कनक रश्मियाँ कलियों के
गोपन प्राणों को उकसातीं
मैं सौरभ की चल अलकों में
गुंजरण रहस हूँ उलझाती !

मैं शशि की रजत तरी पर चढ़
तारापथ से आती जाती
मेघों के सतरँग शिखरों पर
स्वप्नों के केतन फहराती !

मैं नभ क्षितिज के पार जहाँ
स्वर्णिम छायाएँ मँडरातीं
गत संध्याओं के पलनों में
अभिनव प्रभात हूँ बिलमाती !
केवल न प्रकृति ही का प्रांगण
मैं रंग वृष्टि में नहलाती

मैं अंतर जग को भी अपनी
स्वप्निल सुषमा में लिपटाती !

(गीत के स्वर प्राणोन्मादन वाद्य ध्वनियों में डूब जाते हैं)

कलाकार— हाय कहाँ खो गया समस्त मनोबल जाने,
आज निखिल अध्ययन मनन चिन्तन जीवन का
व्यर्थ हो गया ज्योतिरिंगणों-से जगमग कर
निष्प्रभ पड़ते जाते हैं आदर्श सुनहले
ताराओं-से फीके पड़ कर बुझते जाते
दीप ज्ञान के मेघों से घन अंधकार में
ज्योतित कर पा रहे नहीं वे जीवन का पथ !
किन अज्ञात गुहाओं का उन्मत्त तमस यह
आज न जाने उमड़ रहा जीवन मूल्यों का
सतत निमज्जित करने निज उच्छल प्रवाह में !!

चंचल हो उठता फिर फिर मन ! यह क्या केवल
प्राणों का उद्वेलन है ? या मन का भ्रम है ?
अथवा बदल रहा युग करवट ? मन के भीतर
नया सत्य या जन्म ले रहा ? महारात्रि है !
यह कैसी मर्मर ध्वनि जग उठती प्राणों में ?
जीवन के ठूँठे पंजर में नव स्पंदन भर
एक नई चेतना लपेट रही मानस को
अपनी स्वर्णिक शोभा के अभिनव वैभव में —
पुलक पल्लवित हो उठता तन सूक्ष्म गंध से !
स्वप्नों के रंगों में वेष्टित कर प्राणों को
नव वसंत हो फूट रहा अंत:शोभा स्मित !
धुँधला पड़ता जाता मन का पिछला संचय
उपचेतन के गहरे गर्तों की विस्मृति में
एक नया सौन्दर्य ज्वार उठता अन्तर से
वाणी के जड़ पुलिनों को प्रभावित करने !

(स्वप्नवाहक वाद्य संगीत और सहगान)

अप्सरा— मैं स्वप्नों के रस उकसाती
अंतर सौरभ बन छा जाती
मैं रूपहीन तुम विस्मित कर,
स्वर शब्द रहित लय में गाती!

कलाकार— तुम छाया सी छिप बिसमाती
उर में व्याकुलता उपजाती
ओ रंगमयी तुम अंतर को
शोभा ज्वारों में नहलाती!

अप्सरा— मैं मन के नयनों में भाती
उर के श्रवणों में बतलाती
मैं ध्यान मौन अंतर्नभ में
स्मित भावों के पर फैलाती!

कलाकार— तुमको प्रतीति करता अर्पित
उर की श्रद्धा से अभिमंत्रित

अप्सरा— मैं आत्म समर्पण के क्षण में
निर्झर प्रकाश के बरसाती!

(आवाहनसूचक वाद्य संगीत भी मानसिक संघर्ष-द्योतक संगीत में परिणत हो जाता है।)

द्वितीय दृश्य

(मानसिक संघर्ष)

[जीवन की हरी-भरी घाटी पृष्ठभूमि में आरोहण करता हुआ मन का सोपान रजत धूमिल गिरिशृंग-सा दिखाई दे रहा है। नीचे सघन अवचेतन अंधकार में काली घटाएँ अनेक कल्पित आकृतियाँ धरकर उमड़ रही हैं।]

कलाकार— कौन पुकार रहा मुझको अज्ञात देश से
या यह मेरे ही अंतरतम की पुकार है!
आरोहण कर रही भावना किन अनजाने
सीमा के सोपानों से किस नभ्य लोक में
जीवन के मन के स्वर्गों को पार कर निखिल!
नव मानवता के विकास का ज्योति शिखर उठ
दीख रहा सम्मुख स्वर्णिम पंखों से स्पंदित!
एकाकी विचरण कर अंतःस्मित व्योमों में
स्वप्न क्लांत चेतना उतरती जब धरती पर
जहाँ तुमुल जन कोलाहल धूम घन छाया —
तब जैसे लगता है वास्तवता से कट कर
वाष्प खंड सा अपने ही कल्पना जगत में
उड़ता फिरता है मन रिक्त कुहासा बन कर
अपने ही स्वप्नों के इंद्रधनुष से रंजित।
बादल भी जो नहीं बन सका जिसके उर में
गर्जन है तर्जन है, विद्युत् जल सीकर है।
बरस बरस जो धरती को नित उर्वर रखता
प्राणों की हँसमुख हरियाली में पुलकित कर!
और असंयत प्राण बाह्य भीतर के जग में!!
आह यह कैसा संशय का तम घिरता मन में
तमाकार घन छायाकृतियों में कँप कँप कर,

रेंग रहीं जो भग्न पीड़ धरती की रज में ।
ऊपर के नीरव आकाशों में मँडरा कर
सृजन चेतना रुकी हुई है लोक कर्म को
अनुप्राणित करने अपने अभिनव प्रकाश से ।
भव्य समुन्नत कब आएगा जन धरती के
ऊर्ध्व समतल जीवन को शोभा कल्पित कर ।

(नैराश्यसूचक वाद्य संगीत)

युग चेतना का गीत

युग-चेतना— घुमड़ रहा अन्धकार, अन्धकार,
ह्रास नाश का तमिस्र दुर्निवार ।
धरती की गुहाएँ रहीं पुकार
उमड़ रहा घोर सृजन प्रलय ज्वार !
प्रलय ज्वार !

पुरुष ध्वनियाँ—
ये कुंठित कुत्सित कायाएँ,
ये मूर्छित पुंजित छायाएँ,
धरती को बाँहों से पकड़े
फिरतीं लोभी बाँहें पसार !
ये जन धरती के बुद्धिप्राण
आहत जिनका मिथ्याभिमान
गत जरा चेतना के प्रतिनिधि
रोके जो मानव मुक्तिद्वार !

कोमल प्रतिध्वनियाँ— ये महत् विश्व के अवरोधक
अपनी सीमाओं के पोषक
नव मनुष्यत्व के विद्वेषी
निज कुंठा का करते प्रचार !
रेती सी नीरस चमक भरी
बौद्धिकता के तट पर बिखरी
सिद्धांतों की मृग तृष्णा में
ये भटका करते बार बार !

पशु ध्वनियाँ— गिरगिट-से रंग बदल सज्जित
युग परिवेशों को कर बिम्बित
ये सतत प्रतिरोध खड़े करते
युग जीवन धारा के सिवार!
निम्नग अवचेतन के पूजक
अंतश्चेतन के पथ कंटक
ये विद्रोही नर नहीं क्षुब्ध
मानव द्रोही युग के अंगार!

कोमल प्रतिध्वनियाँ— जन जीवन में जो उच्च महत्
वह इन्हें नहीं होता दृग्गत
निज दमित वासना का जग में
ये देखा करते रुद्ध भार!
इनको प्रिय नहीं उदात्त भाव
लघु क्षुद्र घृणित से विकृत चाव
कुछ उलट गई है ऐसी मति
ये सिर के बल करते विहार!

पशु ध्वनियाँ— युग जीवन कर्दम के दादुर
समवेत कण्ठ गाते बेसुर,
जनता जनता रटते उसका
मानवता से कर बहिष्कार!
ये जन धरणी के बुद्धिमान
आहत जिनका मिथ्याभिमान
ये जड़ चेतना के प्रतिनिधि
रोकें मानव का मुक्ति द्वार!

युग-चेतना— घुमड़ रहा अन्धकार, अन्धकार,
नाश में विकास पा रहा निखार,
अन्तरतम की गुहा रही पुकार
नव प्रकाश उठा रहा तिमिर ज्वार,
तिमिर ज्वार!

(युग-विवर्तनसूचक वाद्य संगीत)

कलाकार— बिखर रहा अब विगत मनस्संगठन मनुज का
चूर्ण हो रहा जीर्ण अहंता का विमान मिथ
आज घोर अविश्वास भ्रांति छाई जग भू पर
निगल रहा जीवन तृष्णा का अवचेतन तम
मानव आत्मा के मूल्यों के ध्रुव प्रकाश को!
उतर नहीं पा रही नव्य सौन्दर्य चेतना
युग कल्मष से पंकिल धरती के आँगन में!
आज नया दायित्व भार है मध्यवर्ग के
सृजन प्राण युग जीवन शिल्पी के कन्धे पर,
धरती की सौन्दर्य चेतना का प्रतिनिधि जो!
युग मन के बिखरे अलगक उपकरणों को स
मनुष्यत्व की नव प्रतिमा कल्पित कर उसको
प्राण प्रतिष्ठित करना है जन मन मन्दिर में!
युग आवेशों के कटु कोलाहल में उसको
नव जीवन की स्वर संगति भरनी है व्यापक
वस्तु परिस्थितियों के निश्चेतन पदार्थ को
उसे ढालना है विकसित मानव चरित्र में!

तृतीय दृश्य

(उन्मेष)

[सूक्ष्म बाष्पों का स्वर्णिम छाया-सेतु इन्द्रधनुष की तरह धरती-आकाश के बीच टँगा है जिसके ऊपर खड़ा कलाकार ऊपर को देख रहा है।]

अप्सरा का गीत

मैं ही शिव हूँ मैं ही सुन्दर,
मैं अन्त: सत्य अनश्वर,
मैं युग मांसल से मुक्त आज
फिर उतर रही वसुधा पर !

युग खँडहर पर जो मँडराते
पीले पत्तों के पतझर,
मैं उन्हें मिलाती मिट्टी में
नव मधु की खाद बना कर !

जो युग प्रबुद्ध औ नव जाग्रत्
मझारत संवेदनपर,
मैं उनके अन्तर शिखरों को
छूती फैला स्वर्गिक पर !

जो अहं मूढ़ कृमि साँप
केंचुओं योनों पर न्योछावर
वे सरीसृपों का रूप बोध ले
रेंगा करते भू पर !

मैं मानवता की रूप पूत
सौन्दर्य चेतना भास्वर,
निज रहस स्पर्श से विकसाती
भावों का वैभव प्रखर!

कल्याण प्रगति ऐश्वर्य दिशा
आनंद सरित रस निर्झर
मैं निखर रही फिर प्राणों का
पहने स्वर्णिम छायाम्बर!

(वाद्य ध्वनि आरोहण करती हुई धीरे-धीरे विलीन हो जाती है)

कलाकार— एक नया चैतन्य नया अध्यात्म धरा पर
क्रम से रहा मानव अंतर के शतदल में
निज स्वर्णिम किरणों के वैभव से मज्जित कर
मनुज हृदय की निखिल क्षुद्रता मद महत्ता!
एक महत् चैतन्य उदय हो मानवता के
ऊर्ध्व भाल पर मुकुट रख रहा स्वर्ण ज्योति का!
एक महत् अध्यात्म युगों की धार्मिक नैतिक
सीमाओं को अतिक्रम कर, मानव जीवन को
सँजो रहा फिर पूर्ण समन्वय की संगति में
नम्र संतुलन भर भू की विशृंखलता में
आर्थिक समता वर्ग हीनता के छोरों को
अंतरैक्य के रश्मि तंतु में बाँध अलौकिक
भौतिकता को साम्यवाद को आत्मसात् कर!
महागमन की दिव्य अवतरण की मर्मर ध्वनि
गूँज रही अंतरतम के गोपन गह्वरों में
हिल्लोलित हो रहा धरा चेतना सिन्धु अब
नव भावों के प्रति गति झंझा प्रवेग से
सूक्ष्म भार से प्रमत डोलते धरा शिखर सब
नव प्रकाश के रहस स्पर्श से आंदोलित हो!
उद्वेलित हो रहा आज तम अवचेतन का

घात विरोध की विखर तरंगों में भुजंग सा
आलोड़ित हो उद्धत फन घात फूत्कारें भर,—
गरल फेन बहु उगल अचेतन के नरकों का!
आज नए रावण उपजे हैं नए राम का
युग अभिवादन करने को उन्मुख शीशों से
देवासुर संग्राम छिड़ रहा जन मन भू पर
अद्भुत भावों से गुंजित जग जीवन प्रांगण!
स्वयंवरा बन खड़ी गुंठिता धरा चेतना
प्रकट हो रहे मनोनीत में लोक पुरुष नव —
जीर्ण मान्यताओं का जर्जर चाप तोड़ने
नव जीवन की श्री शोभा को वरने के हित
आकुल चंचल आज युग जन धरणी का मन!

[भावोन्मादक वाद्य संगीत]

धरा चेतना का गीत

मैं प्यासी की प्यासी!
धरती की चेतना मूक
जन मंगल की अभिलाषी!
युग के कर्दम में लिपटा तन
अवचेतन तम में भटका मन
जीवन स्वर्ग बसाने को
कब से आकुल अटवासी!
मैं उदात्त भावों की द्योतक
महत् उच्च कर्मों की पोषक
सत्य बनेंगे कब ये मेरे
स्वप्न अमर अविनाशी!
क्षुब्ध राग द्वेषों से पीड़ित
क्षुद्र श्रेणि वर्गों में खंडित
कब मेरे जन होंगे चेतन
मानव आत्म प्रकाशी!

मानव मेरा पुष्प हास्य क्षण
यदि न रहेगा शाश्वत् उन्मन
अंधकार में सनी रहेगी
बनी दुखों की दासी!
मेरे मूक हृदय में प्रतिक्षण
बजता रहता स्वर्गिक स्पंदन
अमर चेतना से क्षण मंडित
हँसे मृत्यु विनाशी!

कलाकार— ईशावास्य मिदं सर्व कहते द्रष्टा ऋषि
उपनिषदों के पन्नों में जो कुछ अक्षय है
वह भगवत् सत्ता है जग की निखिल वस्तुएँ
ईश्वरमय हैं यही सत्य है सार रूप में।
पर विकास प्रिय भू जीवन के द्वन्द्व क्षेत्र में
ईश्वर के शाश्वत स्वरूप से उसके भावी
महत् रूप ही का आकांक्षी है मानव मन।
जगत मायावत् जीवन भिन्न पदार्थ नहीं है
ईश्वर का ही अंश जगत आरोहण पथ पर,
जिसका पूर्ण प्रकाशित होना निश्चित है।
राग द्वेष के ऊँचे गर्त से मानव जीवन
निखर सकेगा समतल ऊँचाई में उठ कर।
मनुज नियति ऊर्ध्वग जीवन के हित उद्यत हो
पार युगों के बाद पुन चरितार्थ हो रही!

मनुज नियति का गीत

मनुज नियति मैं निर्मम
जग जीवन के पथ में जिसको
छाया माया विभ्रम।
बीती तमिस्रा घोर अँधेरी
पुन बज रही युग रथ भेरी
नव किरणों का विजय हार ले
उतर रहे तुम निरुपम!

बीत रहीं गत मोह निशाएँ
निखर रहीं अब नई दिशाएँ,
गहन छवि बेला प्रकाश का
घातक यह दारुण तम!
बुझता अब ताराओं का नभ
मृत चन्द्रमा का गत निष्प्रभ
ऊषा के अंचल में लिपटा
नव प्रकाश का उपक्रम!
स्वप्नों की चापों से गुंजित
यह पगध्वनि मेरी चिर परिचित
पूर्ण काम करने फिर मुझको
नवल तुम्हारा आगम!
सफल आज तप चिन्तन साधन
सफल युगों के मौन जागरण
सार्थक लौह पगों का मेरे
दुर्गम भूपथ का श्रम!

चतुर्थ दृश्य

(रूपांतर)

[प्रभात के प्रकाश से स्वर्णिम जन धरणी का प्रांगण लता-प्रतानों की एक छोटी-सी पर्णकुटी के द्वार पर खड़ा कलाकार नव प्रभात की शोभा देख रहा है।]

कलाकार— क्या है यह सौन्दर्य चेतना ? जग जीवन की
अंतरतम स्वर संगति जो नव अंतर्नभ के
शिखरों से है उतर रही स्वर्णिम प्रवाह सी
स्वप्नों से शोभा उर्वर करने वसुधा को !
जीवन का आनंद स्वतः ही मूर्तिमान हो
देख रहा निज रजतच्छाया स्मित वैभव को !
मानव के अपलक हृद् शतदल में शुभ्र शोभित
दिव्य प्रेम का अमर स्वप्न प्रस्फुटित हुआ जब
अंतर्मन की प्रथम उषा में शांत सौम्य स्मित,
वह जीवन सौन्दर्य चेतना में लिपटा था !
क्योंकि प्रीति आनंद मधुरिमा —अब मानव का
जीवन भी पर्याय बन रहा उसी सत्य का !
अंतरैक्य में बाह्य साम्य में संयोजित हो
भू जीवन नव शोभा का प्रतिमान बन रहा !

(भू-जीवन के रूपांतर का सूचक आनंद-उल्लासमय मधुर वाद्य संगीत)

अप्सरा का गीत

मैं जन धरणी के प्रांगण में
स्वर्णिम पावक कण बरसाती
सौन्दर्य प्ररोहों की लपटें
चेतना भूमि में उकसाती !

मैं ही भू शय्या पर सोई
मैं मिट्टी के तम में खोई
मैं ही मधु ऋतुओं का वैभव
रज के रोमों में मुसकाती !
सुन्दरता की स्वर लय में नित
जीवन भावों का वर संकुल
स्वर्गिक सुषमा की ज्वाला में
मैं मानव उर को लिपटाती !
मैं स्वप्नों के रथ पर आती
मैं भावों के पर रँग जाती
प्राणों के सौरभ से गुम्फित
छायातप में काँप लहराती !
मैं भरा चेतना की आभा
मैं स्वर्ग क्षितिज की हूँ द्वाभा
मैं ऊषाओं के ज्योति ऋतु
मानस शिखरों पर लहराती !
सौन्दर्य चेतना मैं मन की
मैं आभा मानव जीवन की
मैं स्वप्न संगिनी जन जन की
छिप हृदय कुंज में मुसकाती !

कलाकार— उच्च उच्चतर सोपानों पर चढ़ अधिमन के
प्रति मानस के दिव्य विभव से अभिप्रेरित हो
मनुज चेतना उपचेतन की अन्ध गुहा को
भवमोहित कर रही निखिल कल्मष कर्दम से !
विगत अहंता का विधान विघटित शिथिल हो
मुक्त हो रहा राग द्वेष कुत्सा स्पर्धा से !
भेद भाव मिट रहे, छँट रहा संशय का तम
उदय हो रही अंतर्मुख भावना साम्य की !
नव प्रतीति से सहज प्रीति से भरित होकर
मानव मानव को विलोकता नए रूप में !

संमोहित हो रहा मनुज मन नव प्रकाश में
जन्म ले रही नव मनुष्यता हृदय क्षितिज में।

मनश्चेतना का गीत

भू मानस में आओ!
मेघों के घन अन्तराल से
स्वर्णिम युग दिखलाओ!

ध्वस्त पड़ा युग मन का खँडहर
उमड़ रहे घनघोर बवंडर,
दिक् कंपित अंबर शिखरों पर
नव प्रकाश बरसाओ!

उद्वेलित भू जीवन सागर
लोट रही शत लहर लहर पर,
मानवता की भरी तरी यह
फिर से पार लगाओ!

क्षुधा तृषा शूलों में पोषित
जन जीवन की धारा शोषित
पुलिन मग्न कर, नई चेतना का
युग ज्वार उठाओ!

आज व्यक्तिगत क्षुद्र स्वार्थरत
उर में जन संयम हो जाग्रत्
अमृत प्रीति की विश्व भावना
मन में महत् जगाओ!

अंतर्मन से मिले प्रेरणा
जन जीवन की बने योजना
आत्म त्याग के पूत रक्त में
भू के कलुष डुबाओ!

कलाकार— कैसा युग है क्रूर हमारा ह्रास नाश का
कलाकार के लिए नरक हो गई धरा यह,

शोभाजीवी उर को जीवन की कुरूपता
नागिन सी डँसती रहती शत फन फैलाए!
प्राणचेतना अधोमुखी हो अवचेतन के
तम में लिपटी रेंग रही है भग्न रीढ़ पर,
आरोहण कर पाती नहीं सूक्ष्म आकांक्षा
स्वप्न पंख सौन्दर्य चेतना के स्वर्गों में!
आहत कुंठित सृजन प्रेरणा मृगतृष्णा बन
मन के मरु में भटक रही जीवन विरक्त हो!
संघर्षण का विषम उतर प्राणों के स्तर पर
शोभा मंडित कर पाएगा कब जीवन को?

प्राण चेतना का गीत

प्राणों में निखरो!
भू पथ पर जीवन शोभा के
नव रथ पर बिखरो!

रश्मि वृत्तियों की कर में धर
लोक लीक अभिनव अंकित कर
दुर्दम इच्छा के अश्वों को
संयत स्ववश करो!

स्पंदित हों नव भावों के स्वर
गुंजित हों स्वप्नों से अंतर
निज स्वर्णिम रथ चक्रों का रव
मन में मत्त भरो!

नव आशा से कुसुमित हो मग
नव अभिलाषा से मुखरित पग
नव विकासमय नवल प्रगतिमय
निर्भय चरण धरो!

जीवन मंगल का हो उत्सव
श्री शुभ सुषमा का हो वैभव

मधु रस के निर्झर-से झर तुम
जन मन तृषा हरो !

अमृत स्पर्श से हो तन पुलकित
मौन मधुरिमा से मन मुकुलित
दिव्य शिखा से मुग्ध तमस के
गह्वर में उतरो ।

मधु रस के निर्झर-से झर तुम
जन मन तृषा हरो !

अमृत स्पर्श से हो तन पुलकित
मौन मधुरिमा से मन मुकुलित
दिव्य शिखा से गुह्य तमस के
गह्वर में उतरो ।